उपग्रह और अन्तरिक्ष यान

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

1

अन्तरिक्ष युग का आरम्भ

विश्व के इतिहास में एक नया और उत्तेजक युग शुरू हो चुका यह भूतकाल के किसी भी युग की अपेक्षा अधिक विस्मयकारी की आशा बंधाता है। यह अंतरिक्ष यात्रा का युग है।

विगत शताब्दियों में, साहसी लोगों ने विश्व के समुद्रों, स्तानों और पर्वतमालाओं को पार किया है। हिम्मती लोग ी व दक्षिणी ध्रुव तक पहुच चुके हैं, माउण्ट एवरेस्ट पर चढ़ हैं, और अफ्रीका के घने जंगलो को उन्होने छान डाला है। नों और गुब्बारो में वे समतापमंडल तक चढ़ चुके हैं और की गहराइयों तक पहुंच चुके हैं।

अब खोज के क्षेत्र में वे अत्यन्त साहसिक कार्य की तैयारी कर । वे बाह्य अन्तरिक्ष पर विजय पाने की योजना बना रहे उनका ध्यान चन्द्रमा, शुक्र और मंगल पर लगा हुआ है। चन्द्रमा प्रथम लक्ष्य होगा, क्योंकि अन्तरिक्ष में यह हमारा निकट-ड़ोसी है। वह केवल 240,000 मील दूर है। किसी भी ग्रह तक के लिए लाखों मील की यात्रा करना आवश्यक होगा। किन्तु ार चन्द्रमा पर पहुंच जाने के बाद, साहसी अन्तरिक्ष अन्वेषक दूर, रहस्यमय ग्रहों तक पहुंचने के लिए उत्सुक हो उठेंगे।

वैज्ञानिकों ने ऐसे अन्तरिक्ष यान की योजनाओं पर विचार करना शुरू कर दिया है जो उस विशाल दूरी को तय कर सके जो बादलों से युक्त शुक्र और लालिमायुक्त मंगल ग्रह को हमारी पृथ्वी से अलग करती है। उनमें से कुछेक योजनाएं तो ऐसे अन्तरिक्ष यान के विषय में हैं जो वर्तमान प्रकार के राकेट ईंधनों से चलाया जा सके। लेकिन अनेक वैज्ञानिक नए और असाधारण किस्म के अन्तरिक्ष यान का डिज़ाइन बनाना शुरू कर रहे हैं जो अणुशक्ति का उपयोग करेगा।

यह कहना कठिन है कि चन्द्रमा की पहली यात्रा कब की जाएगी। वैज्ञानिकों को विश्वास है कि यह यात्रा सन् 2000 से पहले ही होगी। हो सकता है कि यह यात्रा 1975 तक ही हो जाए। कुछेक वैज्ञानिकों का तो ख्याल था कि यह यात्रा 1965 तक ही हो जाएगी।

अन्तरिक्ष विजय के सिलसिले में पहला कदम 1949 में उठाया गया जबकि अमरीका की सशस्त्र सेना ने 250 मील की ऊंचाई तक एक द्विखंडीय राकेट छोड़ा।

इस द्विखंडीय राकेट में एक विशाल 40 फुट लम्बा तथा 14 टन भारी वी-2 राकेट और एक पतला 16 फुट लम्बा डब्ल्यू ए सी कारपोरल नामक राकेट था। डब्ल्यू ए सी कारपोरल वी-2 राकेट के अग्रभाग पर चढ़ाया गया था।

वी-2 की शक्ति से ये दोनों राकेट पृथ्वी से रवाना हुए। 20 मील की ऊंचाई पर डब्ल्यू ए सी कारपोरल स्वयमेव छूट गया और बड़े राकेट से अलग हो गया।

क्योंकि वी-2 प्रारम्भ में उसे जिस वेग से ले गया था, उसकी

वजह से इस छोटे राकेट की गति 5,000 मील प्रति घंटा तक पहुं और वह 250 मील की ऊंचाई तक उड़ा।

इस ऊंचाई पर डब्लू ए सी कारपोरल पृथ्वी का 99 प्रतिश वायुमंडल अपने पीछे छोड़ चुका था। इस प्रकार, व्यावहारि दृष्टि से, वह अन्तरग्रही अन्तरिक्ष में पहुच चुका था। 250 मी की ऊंचाई पर वायुमंडल इतना विरल होता है कि निश्चित आयत में विद्यमान वायु के थोड़े से अणुओं की मात्रा लगभग उतनी ही हो है जितनी कि सामान्यतः बहुत अच्छे समझे जानेवाले रेडियो र टेलीविज़न नली के निर्वात में होती है।

यद्यपि विश्व के समाचारपत्रों ने अन्तरग्रही अन्तरिक्ष के छो तक डब्लू ए सी कारपोरल की उड़ान के समाचार प्रकाशित कि किन्तु इस घटना ने कोई अधिक उत्तेजना पैदा नहीं की। अब भ यही सोचा जा रहा था कि अन्तरिक्ष यात्रा का युग बहुत दूर है

परन्तु अन्तरिक्ष विजय के सिलसिले में उठाए गए दूसरे कदम ने यह सब धारणा बदल दी। इस बार वास्तव में सारा विश्व उत्ते जित हो गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्तिम दिनों में, परमाणु बम के विस्फोट के बाद इतनी दिलचस्पी किसी भी घटना ने पैदा नहीं की थी।

यह दूसरा कदम 4 अक्तूबर, 1957 को उठाया गया, जबकि सोवियत रूस ने प्रथम कृत्रिम उपग्रह या चांद छोड़ा। इस धातु-गोले का व्यास 23 इंच और भार 184 पौंड था।

शीघ्र ही वह सारे विश्व में अपने रूसी नाम 'स्पुतनिक' से विख्यात हो गया। पहले कभी भी इतने कम समय में एक नया शब्द इतना लोकप्रिय नहीं हुआ था।

'स्पुतनिक' में रखे गए ट्रांसमीटर ने शीघ्र सकेत ब्राडकास्ट किए।

...ी स्थानों पर वैज्ञानिकों ने, और रेडियो-प्रेमियों ने भी, उसकी ...प बीप' की आवाज़ सुनी।

नवम्बर 1957 को रूसियों ने स्पुतनिक-2 को छोड़कर और ... शानदार और आश्चर्यजनक विजय प्राप्त की। इस स्पुतनिक ... एक जीवित कुत्ते ने भी यात्रा की।

अमरीकी सेना ने अमरीका में निर्मित प्रथम उपग्रह 31 जनवरी, ...58 को छोड़ा। यह संशोधित, चार-खंडीय जूपीटर-सी राकेट के ...थ केप कैनेवेरल (अब केप केनेडी), फ्लोरिडा से छोड़ा गया। ...ना विभाग ने इसका नाम रखा—'दि एक्सप्लोरर'।

अंतरिक्ष-विजय की ओर तीसरा कदम चन्द्रमा को राकेट भेजना ...गा। यह उपग्रह छोड़ने से कुछ ही कठिन होगा और निस्सन्देह ...घ्र ही ऐसा किया जाएगा। हो सकता है कि जब आप यह किताब ...ढ़ें, तब तक ऐसा किया जा चुका हो।

चौथा चरण एक ऐसा राकेट छोड़ना होगा जो चन्द्रमा का ...ारों ओर चक्कर लगाकर वापस पृथ्वी पर लौट आएगा। यदि ...से राकेट में टेलीविज़न कैमरा और ट्रांसमीटर भी हों, तो हम ...न्द्रमा के पृष्ठभाग को भी देख सकेंगे। रूस और अमरीका ऐसे ...राकेट भेज चुके हैं जो चन्द्रमा का चक्कर लगाकर एवं उसके चित्र ...कर वापस पृथ्वी पर लौट आए हैं।

जब मनुष्यों को चन्द्रमा में भेजने की योजना बनाई जाएगी ...ी नयी-नयी कठिनाइयां सामने आएंगी। चन्द्र-सतह से कोई मनुष्य-...विहीन राकेट कितनी ज़ोर से टकराता है, इसका कोई महत्व नहीं ...। यदि राकेट चन्द्रमा के चारों ओर चक्कर काटने लगता है, और ... पृथ्वी पर नहीं लौटता, तो कोई गंभीर बात नहीं है।

परन्तु, जब एक बार यात्री-वाहक राकेट या अन्तरिक्ष
चन्द्रमा के लिए रवाना होता है, तो सारी परिस्थिति बदल
है। हमें अपने यात्रियों को सकुशल पृथ्वी से रवाना करना
हमें अन्तरिक्ष में उन्हें जीवित रखना होगा। हमें उन्हें सु
चन्द्रमा पर उतारना होगा और उन्हें चन्द्र-सतह पर जीवित
होगा। अन्ततः हमें उन्हें सकुशल चन्द्रमा से वापस पृथ्वी पर
होगा।

किन्तु इन सब कठिनाइयों के बावजूद, जिनपर विजय
जरूरी है, वैज्ञानिकों को आशा है कि निकट भविष्य में प्रथम
रिक्ष यात्री चन्द्रमा में पहुंच जाएंगे।

सभी स्थानों पर वैज्ञानिकों ने, और रेडियो-प्रेमियों ने भी, उपग्रह की 'बीप बीप' की आवाज़ सुनी।

नवम्बर 1957 को रूसियों ने स्पुतनिक-2 को छोड़कर और भी शानदार और आश्चर्यजनक विजय प्राप्त की। इस स्पुतनिक में एक जीवित कुत्ते ने भी यात्रा की।

अमरीकी सेना ने अमरीका में निर्मित प्रथम उपग्रह 31 जनवरी, 1958 को छोड़ा। यह सर्वोपरि, चार-मंज़िल जूपीटर-सी राकेट के साथ केप कैनेवेरल (अब केप केनेडी), फ्लोरिडा से छोड़ा गया। रक्षा विभाग ने इसका नाम रखा—'दि एक्सप्लोरर'।

अंतरिक्ष-विजय की ओर तीसरा कदम चन्द्रमा को राकेट भेजना होगा। यह उपग्रह छोड़ने से कुछ ही कठिन होगा और निस्सन्देह शीघ्र ही ऐसा किया जाएगा। हो सकता है कि जब आप यह किताब पढ़ें, तब तक ऐसा किया जा चुका हो।

चौथा चरण एक ऐसा राकेट छोड़ना होगा जो चन्द्रमा का चारों ओर चक्कर लगाकर वापस पृथ्वी पर लौट आएगा। यदि ऐसे राकेट में टेलीविज़न कैमरा और ट्रांसमीटर भी हों, तो हम चन्द्रमा के पृष्ठभाग को भी देख सकेंगे। रूस और अमरीका ऐसे राकेट भेज चुके हैं जो चन्द्रमा का चक्कर लगाकर एवं उसके चित्र लेकर वापस पृथ्वी पर लौट आए हैं।

जब मनुष्यों को चन्द्रमा में भेजने की योजना बनाई जाएगी तो नयी-नयी कठिनाइयां सामने आएंगी। चन्द्र-सतह को मनुष्य-विहीन राकेट कितनी ज़ोर से टकराता है,
है। यदि राकेट चन्द्रमा के चारों ओर
वापस पृथ्वी पर नहीं लौटता,

परन्तु, जब एक बार यात्री-वाहक राकेट या अन्तरिक्ष विमान चन्द्रमा के लिए रवाना होता है, तो सारी परिस्थिति बदल जाती है। हमें अपने यात्रियों को सकुशल पृथ्वी से रवाना करना होगा। हमें अन्तरिक्ष में उन्हें जीवित रखना होगा। हमें उन्हें सुरक्षित चन्द्रमा पर उतारना होगा और उन्हें चन्द्र-सतह पर जीवित रखना होगा। अन्ततः हमें उन्हें सकुशल चन्द्रमा से वापस पृथ्वी पर लाना होगा।

किन्तु इन सब कठिनाइयों के बावजूद, जिनपर विजय पाना जरूरी है, वैज्ञानिकों को आशा है कि निकट भविष्य में प्रथम अन्तरिक्ष यात्री चन्द्रमा में पहुंच जाएंगे।

2

वायु का महासागर

ठीक आपके सिर के ऊपर आकाश में बड़ी विचित्र और डरावनी विषमताएं हैं। वायुमंडल की ऊपरी परतों में और उससे ऊपर शून्याकाश में दक्षिणी ध्रुव से भी अधिक कड़कती ठंड और सहारा रेगिस्तान से भी अधिक प्रखर गर्मी होती है। वहां रेडियोधर्मी धूल से अधिक घातक किरणें और उल्काओं की वर्षा, जिसकी गति 40 मील प्रति सेकण्ड है, होती है।

अन्तरिक्ष यात्री बनने से पूर्व वैज्ञानिकों को इन क्षेत्रों का अधिक ज्ञान प्राप्त करना होगा। केवल तभी वे अपने अन्तरिक्ष यान को उत्तरध्रुवीय प्रकाश की शक्तिशाली किरणों से आगे बढ़ाकर शून्याकाश के अंधकार में ले जा सकेंगे।

हम वायु-समुद्र के तल में रहते हैं, पृथ्वी का वायुमंडल एक विशाल समुद्र की तरह हमारे सिर के ऊपर है। राकेट में चन्द्रमा तक की यात्रा इसी वायु-समुद्र से होते हुए करनी होगी और इसी से होते हुए वापस आने पर यह यात्रा पूरी होगी। इस वायु-समुद्र को पार करने से पूर्व हमें यह सीखना होगा कि इसमें यान का संचालन किस प्रकार किया जाए।

हमें ऊंचाई पर उसकी हवाओं, उसके तापमान और विभिन्न

स्तरों पर घनत्व में उतार-चढ़ाव, उसके विद्युत एवं रासायनिक आचरण में परिवर्तनों के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करनी होगी।

हमें सूर्य की परावैंगनी किरणों, अन्तरिक्ष किरणों और उल्काओं की निरन्तर वर्षा के विषय में भी अधिक ज्ञान प्राप्त करना होगा। वायुमंडल का घना निचला भाग पृथ्वी की सतह पर इनसे हमारी रक्षा करता है। किन्तु अन्तरिक्ष विमान में हमें यह बचाव सुलभ नहीं होगा।

ऊपरी वायुमंडल के विषय में अधिक जानकारी अन्तरिक्ष यात्रा के अतिरिक्त, अन्य अनेक कारणों से भी लाभदायक होगी। उससे हमें मौसम के विषय में अधिक सही भविष्यवाणी करने में सहायता मिलेगी। शायद कभी ऐसा दिन भी आएगा जब हम मौसम के विषय में एक वर्ष पूर्व भविष्यवाणी कर सकेंगे।

जब हमें इस बात की अधिक जानकारी हो जाएगी कि ऊपरी वायुमंडल की विद्युतीकृत परतों पर रेडियो तरंगे किस प्रकार परावर्तित होती है तो रेडियो और टेलीविज़न में भी सुधार हो सकेगा। शायद उत्तरध्रुवीय प्रकाश से हमें कुछ ऐसे रहस्यों का पता चल सके जिनसे हमें अपने शहरों और घरों में प्रकाश के नये तरीके प्राप्त हो सकें।

अन्तरिक्ष की खोज 1783 में गुब्बारे के आविष्कार के तुरन्त बाद शुरू हुई। तापमान, वायु का दबाव और आर्द्रता मापने के लिए 1804 में गुब्बारे में चार मील से कुछ अधिक ऊंची उड़ान भरी गई। इस शताब्दी के प्रारम्भ में ऐसी ही जानकारी प्राप्त करने के लिए विमानों का प्रयोग किया गया।

1935 में, लेफ्टिनेण्ट कर्नल एल्बर्ट डब्लू स्टीवेन्स और मेजर ओ० ए० एण्डरसन समतापमंडलीय गुब्बारे में लगभग 14 मील की ऊंचाई तक उड़े। 1954 में, कैप्टेन इयान किन्केलो बेल एक्स-2 नामक विमान में 24 मील की ऊंचाई तक उड़े।

मनुष्यविहीन किन्तु वैज्ञानिक यंत्रों से सुसज्जित विशाल स्काई-हुक नामक गुब्बारे 28 मील ऊंचाई तक उड़ने में सफल हुए हैं।

राकेटों ने तो कहीं अधिक अच्छा कार्य किया है, वे वैज्ञानिक यंत्रों को 100 मील से भी अधिक ऊंचाई पर ले गए हैं। और अब तो कृत्रिम उपग्रहों या मानवनिर्मित चन्द्रमाओं के माध्यम से और भी अधिक जानकारी प्राप्त की जा रही है।

स्काईहुक गुब्बारों, राकेटों और उपग्रहों का उपयोग आठ महत्व-पूर्ण चीजों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जा रहा है। ये चीजें हैं : विभिन्न ऊंचाइयों पर वायु संरचना, तापमान, घनत्व, विद्युत परिस्थितियां, पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र का प्रभाव, सूर्य की शक्तिशाली किन्तु अदृश्य परावैंगनी किरणें और उल्काएं।

राकेटों का उपयोग काफी ऊंचाई से पृथ्वी के चित्र लेने के लिए भी किया जा रहा है।

वैज्ञानिक वायुमण्डल को पांच परतों में विभक्त करते हैं और प्रत्येक को एक वैज्ञानिक नाम दिया गया है।

ये परतें हैं : क्षोभमण्डल, समतापमण्डल, ओज़ोनमण्डल, आयन-मण्डल और बहिःमण्डल।

हम क्षोभमण्डल के तल पर रहते हैं। यह मण्डल समुद्र की सतह से औसतन सात मील ऊंचे तक फैला है। यह पृथ्वी के वायु-मंडल का अनिश्चित और विक्षुब्ध क्षेत्र है जिसमें बादल छाते हैं और

आयनमंडल से ऊपर बहिर्मंडल जो अंतरिक्ष में खो जाता है।

हमारे मौसम का निर्माण होता है।

यद्यपि क्षोभमंडल की ऊंचाई अपेक्षाकृत कम है, किन्तु अधिकांश वायुमंडल उसीमें है। वायुमण्डल की रचना करनेवाली 75 प्रतिशत गैसें क्षोभमंडल में ही हैं।

जब आप पहाड़ पर चढ़ते हैं, तो आपको चोटी पर सांस लेने में कठिनाई प्रतीत होती है। संभव है कि सबसे ऊंची चोटी बारह महीने वर्फ से ढकी रहती हो। ऐसा इसलिए होता है कि जैसे-जैसे हम क्षोभमण्डल में प्रवेश करते हैं, वायु विरल और ठंडी होती जाती है।

क्षोभमंडल में बढ़ते हुए, हर तीन सौ फुट की ऊंचाई पर तापमान एक डिग्री फारेनहाइट गिर जाता है। क्षोभमंडल की उच्चतम सीमा पर पहुंचते-पहुंचते तापमान शून्य से 60 डिग्री नीचे चला जाता है।

दूसरी परत है समतापमंडल। यह क्षोभमंडल की अन्तिम सीमा से शुरू होकर बीस मील ऊंचाई तक जाती है। समतापमंडल में निरंतर तेज हवा चलती रहती है। यहां विशाल, तेजी से प्रवाहित होनेवाली हवा की दो नदियां, समतापमंडल के तल पर पृथ्वी का चक्कर लगाती हैं। ये जेट प्रवाह हैं।

इनमें से हवा की एक नदी पश्चिम से पूर्व की ओर, उत्तरी ध्रुव और भूमध्यरेखा के बीच में बहती है। दूसरी पूर्व से पश्चिम की ओर, दक्षिणी ध्रुव और भूमध्यरेखा के बीच बहती है। इनकी निश्चित स्थिति और गति दिन-प्रतिदिन बदलती रहती है। कभी-कभी तो उनकी गति एक घंटे में पांच सौ मील तक पहुंच जाती है।

इन जेट प्रवाहों की खोज द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान की गई ... अमरीकी विमान-चालक अपने बी-29 बमवर्षक विमानों

को उड़ाकर समतापमंडल में ले गए।

समतापमंडल में, 12 मील की ऊंचाई पर तापमान शून्य से 80 डिग्री नीचे चला जाता है।

वायुमंडल की तीसरी परत समतापमंडल में भी थोड़ी-बहुत व्याप्त है। यह ओज़ोनमंडल है जो 12 मील ऊंचाई से 30 मील ऊंचाई तक फैला है। इसे ओज़ोनमंडल इसलिए कहा जाता है कि इसमें एक किस्म की आक्सीजन होती है जिसे ओज़ोन कहा जाता है।

विचित्र-सी बात है कि ओज़ोनमंडल गर्म है। यहां तापमान शून्य से 30 डिग्री ऊपर चला जाता है। ऐसा इसलिए है कि ओज़ोन सूर्य की परावैंगनी किरणों को सोख लेती है।

वायुमंडल की चौथी परत आयनमंडल है। यह विचित्र और रहस्यमय क्षेत्र है जहां उत्तरध्रुवीय प्रकाश फैला रहता है। यह पृथ्वी की सतह से 30 मील की ऊंचाई से शुरू होता है। अभी तक यह किसी को पता नहीं कि यह मंडल कितनी ऊंचाई तक चला गया है, संभवतः 500 मील तक हो। प्रथम 200 मील के विषय में वैज्ञानिकों को कुछ जानकारी है। शेष रहस्य के गर्भ में छिपा है।

आयनमंडल एक ऐसा क्षेत्र है जहां सूर्य की शक्तिशाली परा-बैंगनी किरणों, बाह्याकाश से आनेवाली ब्रह्माण्ड किरणों और उल्काओं की घातक वर्षा से बचाव के बिना कोई भी अन्वेषक जीवित नहीं रह सकता।

पृथ्वी की सतह पर जीवन केवल इसलिए संभव हो सका है कि हमारे वायु-सागर का तल सबसे घना है। भूमि पर पहुंचने से पहले अधिकांश उल्काएं घर्षण से जल जाती हैं। वायुमंडल के इस घने हिस्से से सूर्य की परावैंगनी किरणों और ब्रह्माण्ड किरणों का थोड़ा-सा

भाग ही छनकर आ पाता है।

आयनमंडल में वायु की अनेक विद्युतीकृत या आयनयुक्त स
हैं। ये 'रेडियो सीमाएं' हैं। रेडियो तरंगें, ट्रांसमीटिंग स्टेशन
शृंगिका (एंटेना) को छोड़कर, इन सतहों से टकराती हैं औ
उन तरंगों को वापस पृथ्वी पर परावर्तित करती हैं।

आयनमंडल में पुनः तापमान गिर जाता है। 50 मील
ऊंचाई पर तापमान शून्य से 90 डिग्री नीचे चला जाता है। उ
बाद आश्चर्य की बात है कि वह फिर ऊपर चढ़ने लगता है
100 मील की ऊंचाई पर 549 डिग्री पर पहुच जाता है।

पृथ्वी के वायुमंडल की पांचवी परत है बहिःमंडल। यह
क्षेत्र है, जहां वायुमंडल शून्याकाश में बदलने लगता है। इस मं
के विषय में बहुत कम जानकारी है।

नित्य ही खरबों छोटी-छोटी उल्काएं पृथ्वी के वायुमंडल
टकराती है। उनमें से अधिकांश पिन के सिर से बड़ी नहीं होतीं
कुछेक हजार संभवतः कंकड़ों के बराबर हों।

जब कोई उल्का पृथ्वी के वायुमडल में प्रवेश करती है, तो
वायु से घर्षण होने के कारण जल जाती है।

3

वाइकिंग राकेट

न्यू मैक्सिको रेगिस्तान पर प्रातःकालीन सूर्य की चमकी
किरणें तिरछी पड़ती हैं। पांच-मंजिली इमारत के बराबर ऊ
अलुमीनियम की एक पतली पेंसिल पर जब ये किरणें पड़ती हैं
चकाचौंध पैदा कर देती हैं। यह दृश्य व्हाइट सैन्ड्ज प्रूविंग ग्रा
का है। ऊपरी वायुमंडल की खोज के लिए यंत्रों से सुसज्जित
वाइकिंग राकेट छोड़ा ही जानेवाला है।

यह विशाल राकेट कंक्रीट के बने फायरिंग पिट के ऊपर
इस्पात निर्माण धरनी पर रखा है। उसका अग्रभाग सीधे आ
की ओर है। उन वैज्ञानिकों ने जो इसे आकाश में छोड़ेंगे, नि
स्थल से पांच सौ फुट दूर कंक्रीट से निर्मित कक्षों के नियंत्रण-प
में अपना स्थान ग्रहण कर लिया है।

इन कक्षों की कंक्रीट से बनी दीवार 12 फुट मोटी है औ
की मोटाई भी इतनी ही है। पिरामिड की शक्ल की छत भी
से बनी है और यह 27 फुट मोटी है। संकरी दरारनुमा खि
पर आठ इंच मोटे शीशे लगाए गए हैं।

कक्ष का इस प्रकार से निर्माण इस बात का संकेत करता
एक विशाल राकेट को छोड़ने में कितना खतरा है। यदि

ठीक रहा तो राकेट ऊपर आकाश की ओर चला जाएगा। किन्तु राकेट निर्माण-स्थल पर ही फट भी तो जाते हैं।

जिस रात एक जीप वाइकिंग को खींचकर निर्माण-स्थल पर लाई, उससे एक रात पहले उसे छोड़े जाने की तैयारी शुरू हुई। राकेट को रबर के पहियों वाली एक गाड़ी पर रखा गया। इस गाड़ी का नाम उसके आविष्कर्ता के नाम पर बार-गाड़ी रखा गया है। वास्तव में इस गाड़ी के दो अलग-अलग भाग हैं। एक भाग में, जिससे राकेट का सिरा बंधा रहता है, केवल एक रबर का पहिया लगा रहता है। दूसरे में, जिससे पिछले हिस्से के पंख बंधे रहते हैं, दो पहिये होते हैं। इन तीनों पहियों में विमानों की तरह के धक्का-सह लगे रहते हैं।

राकेट को ठीक स्थान पर रखने और उसे छोड़ने के लिए तैयार करने हेतु एक विशाल गंत्री क्रेन का प्रयोग किया जाता है। इसमें इस्पात गर्डर के दो समकोणीय बुर्ज होते हैं जो चोटी पर अनेक गर्डरों के पुल से जुड़े रहते हैं। यह क्रेन 60 फुट ऊंचा होता है जिसे चार पटरियों पर ले जाया जाता है। निर्माण-स्थल के दोनों ओर दो-दो पटरियां होती हैं ताकि गंत्री क्रेन को बिलकुल निर्माण-स्थल के ऊपर लाया जा सके। दोनों ओर की पटरियों के बीच में 20 फुट का फासला होता है।

निर्माण-स्थल में फ्लडलाइटों से इतना प्रकाश किया जाता है कि रात दिन में बदल जाती है।

गंत्री क्रेन की चोटी से तारों के सहारे कांटा नीचे छोड़ा जाता और बार-गाड़ी के अगले हिस्से से जोड़ दिया जाता है। अब खींचे जाते हैं और राकेट के सिरे के आकाश में उठने के साथ

ही, राकेट बार-गाड़ी के पिछले पहियों से आगे की ओर बढ़ता है। जब राकेट जमीन से पूर्णतः ऊपर उठ जाता है, तो बार-गाड़ी का पिछला हिस्सा हटा लिया जाता है।

अब गंत्री क्रेन धीरे-धीरे निर्माण-स्थल की ओर बढता है और तब तक उसे आहिस्ता-आहिस्ता नीचे उतारा जाता है जब तक कि वह निर्माण-स्थल पर अपने पंखों पर खड़ा नहीं हो जाता।

गंत्री क्रेन के दो बुर्जों के बीच में कई जगह पर पुल बने होते हैं। इनसे राकेटकर्मी दल को राकेट के विभिन्न भागों में बने छोटे-छोटे दरवाजों तक पहुंचने में सहायता मिलती है। बहुधा निर्माण-स्थल पर लगभग 12 व्यक्ति वैज्ञानिक यंत्र फिट करने एवं जाइरो, इलैक्ट्रानिक रिले, वॅल्व तथा राकेट के अन्य यंत्रों की जांच करने में जुटे होते हैं।

यदि हर काम निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार हुआ तो राकेट, निर्माण-स्थल पर रखे जाने के 14 घंटे बाद छोड दिया जाता है। छोड़ने के समय को एक्स कहा जाता है और उसकी गिनती उलटी ओर से की जाती है।

इसलिए राकेट छोड़ने का कार्यक्रम एक्स-14 घंटे से शुरू होता है जबकि वैज्ञानिक गंत्री क्रेन के सबसे ऊंचे पुल पर चढ़कर, वायु-मंडल, ब्रह्मांड किरणों आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करनेवाले यंत्रों को राकेट के अग्रभाग पर फिट करते हैं। प्रत्येक यंत्र की सावधानी से जांच की जाती है ताकि यह निश्चित हो सके कि जब राकेट आकाश में होगा तो प्रत्येक यंत्र सुचारु रूप से अपना कार्य करेगा।

एक्स-10 घंटे पर रेडियो विशेषज्ञ रेडियो ट्रांसमीटर फिट करते

है, जो रेडियो संकेत भेजेगा, जिससे राकेट की उड़ान की जांच
जा सकेगी। ट्रांसमीटर का परीक्षण किया जाता है ताकि
निश्चित हो सके कि प्रेक्षण-केन्द्रों को उसके संकेत मिलते हैं।

राकेट रेडियो के सम्बन्ध-विच्छेद यंत्र-व्यवस्था की जांच एस
घंटे पर की जाती है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। सम्बन्ध-विच्छेद
में बैठे वैज्ञानिकों के लिए यह संभव बना देता है कि वे राकेट
मोटर का ईंधन बन्द कर सकें। यदि उड़ान अनियत हो जाए
राकेट अपने मार्ग से हट जाए तो वैज्ञानिक रेडियो संकेत भेज
ईंधन की सप्लाई बन्द कर देते हैं।

ईंधन भरना एक्स-3 घंटे पर शुरू होता है। इसके लिए प्रशि
विशेषज्ञ और कर्मीदल की आवश्यकता होती है। सबसे पहले ए
कोहल भरा जाता है, उसके बाद हाइड्रोजन परऑक्साइड की टं
भरी जाती है और अंत में भरी जाती है तरल ऑक्सीजन की टंकी

ईंधन भरनेवाले कर्मीदल के सदस्य विशेष बचाव-वस्त्र पहन
है। उनके सिरों का बचाव प्लास्टिक के बने टोपों से किया जा
है। राकेट के पास खड़े वे ऐसे दिखाई देते हैं जैसेकि वे अभी-अभी
अंतरिक्ष से आए हों।

उक्त तीनों कार्यों में से सर्वाधिक दर्शनीय कार्य तरल ऑक्सी
का भरना होता है। राकेट के अग्रभाग के पास दो छेद होते हैं जो
ऑक्सीजन टैंक से जुड़े होते हैं। जब तरल ऑक्सीजन, जिसका
तापमान शून्य फारेनहाइट से 300 डिग्री कम होता है, टंकी में भरा
जाता है तो ऑक्सीजन वाष्प छेदों के पास जमने लगता है और
सफेद कोहरा हो जाता है।

ये सब कार्य सम्पन्न हो जाने पर, सभी यंत्र बड़ी से हटा

दिया जाता है और अब विशाल वाईकिंग राकेट, अग्रभाग आकाश की ओर किए हुए, अकेला निर्माण-स्थल पर खड़ा रह जाता है।

अब निर्माण-स्थल से ईंधन के ट्रक तथा अन्य गाड़ियां हटा दी जाती हैं और वैज्ञानिक तथा इंजीनियर कंक्रीट कक्ष में अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लेते हैं। टाइमकीपर माइक्रोफ़ोन के पास खड़ा होकर घोषणा करता है—"एक्स-15 मिनट शेष हैं। ध्यान दीजिए, एक्स-15 मिनट।" इसका मतलब यह है कि यदि सब कुछ ठीक रहा तो 15 मिनट में राकेट छोड़ दिया जाएगा।

उसकी आवाज़ कंक्रीट कक्ष में सुनी जाती है। यदि कोई मौजूद हो तो उसे चेतावनी देने के लिए कंक्रीट कक्ष के बाहर लगे लाउड-स्पीकरों से भी यह आवाज़ प्रसारित की जाती है।

रेगिस्तान में और आसपास के पहाड़ों में अनेक केन्द्र होते हैं, जहां से प्रकाशीय दूरबीनों, रेडियो और रेडारों की सहायता से राकेट के पथ का पता चलाया जाएगा। "एक्स-15 मिनट" की घोषणा इन सब केन्द्रों तक पहुंचाई जाती है।

कार्यभारी वैज्ञानिक फायरिंग डेस्क के पास खड़ा है। डेस्क के पीछे मीटरों की दो कतारें हैं। ये बताते हैं कि राकेट में चीजें किस स्थिति में हैं।

ये मीटर बिजली के तार से राकेट से जुड़े होते हैं। यह तार निर्माण-स्थल से 20 फुट दूर, 40 फुट ऊंचे खम्बे के सिरे तक जाता है। वहां से यह राकेट के अग्रभाग से जुड़ा होता है। राकेट छोड़ने के साथ ही यह तार स्वयमेव अलग हो जाएगा।

इसके बाद घोषणा होती है—"एक्स-10 मिनट शेष हैं। ध्यान दीजिए, एक्स-10 मिनट।"

अब राकेट में विद्युत शक्ति चालू कर दी जाती है। जब कंक्रीट कक्ष में स्विच बन्द कर दिए जाते हैं तो तारों द्वारा विद्युत-आवेग राकेट तक पहुंचता है। वह रिले करता है जिससे राकेट में बिजली सर्किट बन्द हो जाता है। राकेट की उड़ान को नियंत्रित करनेवाले गाइरो गूंजने लगते हैं।

टाइमकीपर अब एक-एक मिनट करके गिनने लगता है। हर गिनती पर, कोई न कोई वैज्ञानिक स्विच दबाता है जिससे राकेट का कोई न कोई यंत्र चालू हो जाता है। यदि उसके मीटर यह बताते हैं कि सब कुछ ठीक है, तो वह एक बटन दबाता है जो फायरिंग डेस्क पर जलती लाल बत्ती को हरे में बदल देता है। फायरिंग डेस्क पर बैठा वैज्ञानिक सावधानी से देखता है कि प्रत्येक लाल बत्ती हरे में बदल गई है, जैसाकि उन्हें बदलना चाहिए।

"एक्स-1 मिनट" की घोषणा पर इन वैज्ञानिकों में से एक बटन दबाता है जिससे राकेट के ईंधन की टंकियां दाबानुकूलित हो जाती हैं। यह वैज्ञानिक सावधानी से अपने मीटर देखता है। अगर वह देखता है कि सब कुछ ठीक है, तो वह फायरिंग अफसर को हरी बत्ती दिखाता है।

अब राकेट छोड़ने में केवल एक मिनट शेष रह गया है। अगली घोषणा होती है—"45 सेकंड।" फायरिंग डेस्क पर "सब ठीक" का संकेत पहुंचता है।

"35 सेकंड।"

फायरिंग अफसर कहता है, "रिकार्डर तैयार हो जाएं।" ये शब्द उन रेडियो स्टेशनों को प्रसारित किए जाते हैं जो राकेट के [illegible] संकेत प्राप्त करेंगे। इस आदेश पर वे अपने टेप-रिकार्डरों

को चालू कर दें

"25 सेकंड।

20 सेकंड रह जाने पर टाइमकीपर एक-एक करके सेकंड गिनने लगता है, "बीस, उन्नीस, अठारह, सत्रह……।"

अन्ततः,—"पांच—चार—तीन—दो—एक—फायर।"

फायरिंग अफसर हरी बत्तियों को देखता रहा है। अगर कोई गड़बड़ होती तो कोई लाल बत्ती जल उठती। अब वह फायरिंग बटन दबाता है। विद्युत वेग तार से राकेट तक पहुंचता है। राकेट के मोटर में ईंधन पहुंचता है और वह प्रज्वलित होता है।

राकेट के अग्रभाग से तार गिर जाता है। राकेट-स्थल पर बहुत तेज़ प्रकाश होता है और ईंधन के जलने के साथ ही भीषण गर्जन की आवाज़ आने लगती है। टर्बाइन और पम्प जब पूरी गति पकड़ लेते हैं तो साइरन की जैसी कानों को फाड़नेवाली कर्कश आवाज़ भी अब सुनाई देती है।

अब राकेट निर्माण-स्थल से उठ रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि राकेट मोटर के नाजल से निकल रहे अग्निस्तंभ में अपने को संतुलित कर रहा है।

राकेट अब गति पकड़ता है और अग्निस्तंभ एक तीव्र गतिशील पूंछ की शक्ल में बदल जाता है। जल्दी ही राकेट की गति तेज़ हो जाती है और वह ऊपर, गर्जन के साथ अपने निर्धारित पथ पर बढ़ जाता है।

रैडार और शक्तिशाली दूरबीनों से राकेट की उड़ान देखी जाती है। रेडियो आपरेटर अपने टेप रिकार्डरों पर नज़र लगाए हुए हैं जिनपर राकेट के स्वचालित यंत्रों से संकेत प्राप्त हो रहे हैं।

साउंडिंग रॉकेट के अग्रभाग में टी० एन० टी० विस्फोटक होता है। यह विस्फोटक कुछ ही पौंड होता है, लेकिन जब रॉकेट अपनी अधिकतम ऊंचाई पर पहुंच जाता है तो यह अग्रभाग को अलग करने के लिए पर्याप्त है।

इससे रॉकेट की सीधी और त्रुटिहीन उड़ान समाप्त हो जाती है और इस कारण यह सीधे सीधे नहीं उतरता। परिणामतः, उसकी गति धीमी हो जाती है और भूमि पर आकर इतनी जोर से नहीं टकराता जितनी जोर से अन्यथा टकराता।

इस प्रकार भूमि पर टकराने से जो झटका लगता है, उससे रॉकेट में रखे गए वैज्ञानिक यंत्रों के नष्ट न होने के अवसर बढ़ जाते हैं। यदि रॉकेट पृथ्वी के चित्र लेने के लिए कैमरा या सूर्य के वर्णक्रम (स्पैक्ट्रम) का रिकार्ड करने के लिए वर्णक्रम लेखन (स्पैक्ट्रोग्राफिक) यंत्र ले गया हो तो यह बात विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

राकेट के भूमि पर उतरते ही, दूरबीन तथा रेडार से राकेट-पथ को देखनेवाले लोगों द्वारा की गई जानकारी के आधार पर खोजी दल उसकी तलाश में जाते हैं और यंत्रों को खोज निकालते हैं।

4

पटाखों से उपग्रह तक

जो विशाल अन्तरिक्ष यान किसी दिन आपको चन्द्रमा पर ले जाएगा वह अत्यधिक ऊंचाई पर जानेवाले उन राकेटों का पोता होगा जिनका उपयोग ऊपरी वायुमंडल की खोज करने और उपग्रहों को कक्षा में स्थापित करने के लिए किया जाता है। ये राकेट स्वयं उन आतिशबाजी वाले हवाई राकेटों के पोते हैं जो 4 जुलाई के त्योहार के दिन प्रकाश करते हुए आकाश में जाते हैं और वहां फटकर उनसे रंगबिरंगे तारे निकलते हैं।

यदि यह बात आपकी समझ में आ जाए कि ये हवाई राकेट किस प्रकार चलते हैं तो आपको किसी भी तरह के राकेटों को समझने में कठिनाई नहीं होगी।

यह हवाई राकेट बहुत सरल होता है। इसमें एक पतली डंडी के सिरे पर, गत्ते से बनी पांच या छः इंच लम्बी एक नली लगी रहती है। इस नली को बारूद से भर दिया जाता है और उसके नीचे पलीता लगा होता है।

इस प्रकार के राकेट चीनियों द्वारा सात सौ वर्ष से भी पहले बनाए गए थे। वे इन राकेटों का प्रयोग दुश्मनों को डराने व भगाने तथा आतिशबाजी के लिए करते थे।

काफी समय पहले चीनियों ने अपने राकेटों के डिज़ाइन
सुधार किया। ये सुधार आतिशबाज़ी वाले राकेटों में आज भी दे
जा सकते हैं। इनमें से एक सुधार उन्होंने यह किया कि राकेट
सिरे को नुकीला बना दिया जिससे राकेट पहले की अपेक्षा अधि
अच्छी तरह उड़ने लगा।

चीनियों ने इस बात का भी पता लगाया कि राकेट के नुकी
छोर पर अतिरिक्त बारूद भरा जा सकता है और जब राके
दुश्मन की सेना पर गिरे तो उसका विस्फोट कराया जा सकत
है। आजकल आतिशबाज़ी वाले राकेटों के अग्रभाग में रंगीन ता
भरे रहते हैं।

दूसरा सुधार जो चीनियों ने किया वह था राकेट की बारू
की नली के पीछे एक छेद करना। इससे बारूद तेजी से जलने लग
और राकेट की उड़ान भी तेज हो गई। यदि आतिशबाज़ी वाले
किसी राकेट को बीच से लम्बाकार काटकर खोला जाए तो वह इस
तरह दिखाई देगा :
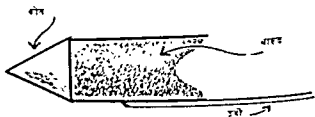
राकेट बनाने का रहस्य अरबों ने चीनियों से सीखा और योरोप के राष्ट्रों ने अरबों से। शीघ्र ही योरोप की सभी सेनाएं राकेटों का प्रयोग करने लगी। किन्तु सन् 1500 तक राकेटों का प्रयोग छोड़कर तोपों का प्रयोग शुरू हो चुका था।

सुधरे हुए राकेटों का प्रयोग सन् 1800 के आसपास पुन: होने लगा। 1812 के युद्ध में ब्रिटेन ने अमरीका के विरुद्ध राकेटों का प्रयोग किया।

कई लोगों को इस बात से आश्चर्य होता है कि राकेट किस तरह उड़ता है और इस विषय में उन्हें अनेक भ्रांतियां हैं। वे यह कल्पना करते हैं कि राकेट जो गैस छोड़ता है वह वायुमंडल से टकराती है। यह बिलकुल गलत है।

वायुमंडल से राकेट को कोई सहायता नहीं मिलती। वस्तुतः वायुमंडल तो बाधक है क्योंकि वह राकेट की उड़ान का प्रतिरोध करता है। वायुमंडल की अपेक्षा शून्याकाश में राकेट कहीं आसानी से चला जाता है।

राकेट का व्यवहार महान वैज्ञानिक सर आइज़क न्यूटन द्वारा प्रतिपादित नियम से स्पष्ट हो जाता है। यह नियम है गति के विषय में न्यूटन का तीसरा सिद्धान्त। यह नियम बताता है कि हर क्रिया की उसी मात्रा में विरोधी प्रतिक्रिया होती है।

अगर आपने कभी बन्दूक चलाई है तो आपको याद होगा कि आपके कंधे पर बन्दूक का झटका लगता है। यह झटका बन्दूक का प्रतिक्षेप है। यह गोली की अग्रगति के प्रति बन्दूक की प्रतिक्रिया है।

इसी तरह राकेट की अग्रगति, राकेट से निकलनेवाली गैस की पश्चगति की प्रतिक्रिया है; इस प्रकार :

1850 के आसपास विश्व की सेनाओं ने एक बार पुनः राकेटों का प्रयोग छोड़ दिया और राकेटों का प्रयोग मुख्यतः आतिशबाजी के लिए किया जाने लगा। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में वे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत नहीं होते थे।

किन्तु एक शर्मीले और वृद्ध लेकिन प्रतिभाशाली और अध्यवसायी अमरीकी वैज्ञानिक ने, जिन्होंने अपना सारा जीवन राकेटों पर अनुसंधान में लगा दिया था, इस स्थिति को बदल दिया। यह वैज्ञानिक थे मैसाच्यूसेट्स के वारसेस्टर विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र के प्रोफेसर डा० राबर्ट हचिन्स गोडार्ड। उन्हें 'आधुनिक राकेट विज्ञान के पिता' के रूप में याद किया जाता है।

डा० गोडार्ड के अनुसंधानों ने यह सिद्ध कर दिया कि राकेट की गति, उससे निकलनेवाली जलती हुई गैसों की गति पर निर्भर है। शीघ्र ही उन्हें अनुभव हो गया कि बारूद के ईंधन से उस तरह का राकेट नहीं बनाया जा सकता जिस तरह का वह चाहते हैं। अतः उन्होंने अपना ध्यान तरल ईंधन की ओर लगाया।

16 मार्च, 1926 को, गोडार्ड ने पहला सफल राकेट छोड़ा जिसमें तरल ईंधन प्रयुक्त किया गया था। यह राकेट मैसाच्यूसेट्स के एक छोटे-से नगर औबर्न में बर्फ से ढके एक खेत से, जो उनके मित्र का [illegible] गया।

यह एक हल्का-सा राकेट था, केवल 10 फुट लम्बा। इसमें गैसोलिन तथा तरल श्राक्सीजन का प्रयोग किया गया। तरल-ईंधन वाला राकेट, वायु से श्राक्सीजन नहीं ले सकता, जबकि मोटरगाड़ी या विमान का इंजन ऐसा कर सकता है। ऐसे राकेट को स्वयं अपना आक्सीजन ले जाना होता है।

गोडार्ड का छोटा-सा राकेट ढाई सेकंड तक आकाश में रहा और उसने 184 फुट की यात्रा की। यद्यपि यह अवधि और दूरी अधिक नहीं मालूम पड़ती तथापि यह शुरुआत मात्र थी।

उन्होंने तरल-ईंधन राकेटों पर कार्य जारी रखा। इसी बीच अन्य वैज्ञानिक और शौकिया लोग भी इस क्षेत्र में जुट गए, औ अमरीका, इगलैण्ड तथा जर्मनी सहित अनेक देशों में राकेट समि तियां स्थापित की गईं।

हिटलर के शासन से पूर्व, जर्मन सेना ने एक कार्यक्रम शुरू किय जो दिन पर दिन बढ़ता गया। अन्तत: बाल्टिक सागर के पास पीनेमू में एक विशाल संस्थान स्थापित किया गया। यहीं वी-2 राकेट क विकास किया गया। संस्थान के अध्यक्ष थे मेजर-जनरल वाल्ट डार्नबर्गर। योजना विभाग के अध्यक्ष डा० वर्नहर वान ब्रौन थे।

लन्दन पर पहला वी-2 राकेट 8 सितम्बर, 1944 को गिरा अगले सात महीनों में एक हजार से अधिक ऐसे राकेट लन्दन उसके आसपास गिरे, जिनसे लगभग दो हजार व्यक्ति मारे ग और भारी क्षति भी हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान वी-2 बचाव का कोई रास्ता नहीं निकाला गया।

वी-2 राकेट 46 फुट लम्बा और 14 टन भार का था। उस अस्त्रों का वजन एक टन था। राकेट का अधिकांश भार उस

प्रणोदकों में था। यह चार टन एथिल एलकोहल और पांच टन तरल आक्सीजन अपने साथ ले जाता था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अमरीका, ब्रिटेन और जर्मनी द्वारा अनेक छोटे-छोटे राकेटों का विकास किया गया। इनमें से अनेक ने सुधरे हुए ठोस ईंधन का प्रयोग किया।

ठोस ईंधन वाले इन राकेटों में, ईंधन राकेट मोटर के दहन-कक्ष के अन्दर रखा जाता था।

तरल ईंधन वाले राकेटों के लिए सबसे आसान व्यवस्था यह है कि वे हीलियम या नाइट्रोजन जैसी किसी निष्क्रिय गैस की टंकी का प्रयोग करें जो राकेट के मोटर में ईंधन पहुंचाए। इस तरह की व्यवस्था का डायग्राम अगले पृष्ठ पर दिया गया है।

किन्तु वी-2 या उसके बाद बननेवाले राकेटों के लिए यह व्यवस्था बहुत उपयोगी नहीं थी। ईंधन दहन-कक्ष में तेज़ी से नहीं [illegible] पाता था।

[illegible] के दहन-कक्ष में एलकोहल और तरल आक्सीजन पहुंचाने [illegible] चालित पम्पों का प्रयोग किया गया। यह टर्बाइन

भाप से चलता था और भाप अत्यधिक सांद्रित हाइड्रोजन पर-आक्साइड तथा पोटेसियम परमैंगनेट की प्रतिक्रिया से वायलर में पदा होती थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर अमरीकी सेनाओं ने भारी संख्या में वी-2 राकेटों पर कब्जा किया। इनका प्रयोग व्हाइट सैन्ड्स प्रूविंग ग्राउण्ड न्यू मेक्सिको में अधिक-ऊंचाई के अनुसंधान की शुरुआत करने के लिए किया गया।

बाद में अमरीकी वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित दो किस्म के राकेटों

प्रकोष्ठों में था। यह चार टन एथिल एलकोहल और पांच टन तरल आक्सीजन अपने साथ ले जाता था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अमरीका, ब्रिटेन और जर्मनी द्वारा अनेक छोटे-छोटे राकेटों का विकास किया गया। इनमें से अनेक ने सुधरे हुए ठोस ईंधन का प्रयोग किया।

ठोस ईंधन वाले इन राकेटों में, ईंधन राकेट मोटर के दहन-कक्ष के अन्दर रखा जाता था।

तरल ईंधन वाले राकेटों के लिए सबसे आसान व्यवस्था यह है कि वे हीलियम या नाइट्रोजन जैसी किसी निष्क्रिय गैस की टंकी का प्रयोग करें जो राकेट के मोटर में ईंधन पहुंचाए। इस तरह की व्यवस्था का डायग्राम अगले पृष्ठ पर दिया गया है।

किन्तु वी-2 या उसके बाद बननेवाले राकेटों के लिए यह व्यवस्था बहुत उपयोगी नहीं थी। ईंधन दहन-कक्ष में तेजी से नहीं पहुंच पाता था।

वी-2 के दहन-कक्ष में एलकोहल और तरल आक्सीजन पहुंचाने के लिए टर्बाइन चालित पम्पों का प्रयोग किया गया। यह टर्बाइन

भाप से चलता था और भाप अत्यधिक सांद्रित हाइड्रोजन पर-ग्राक्साइड तथा पोटेसियम परमेंगनेट की प्रतिक्रिया से बायलर में पदा होती थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर अमरीकी सेनाओं ने भारी संख्या में वी-2 राकेटों पर कब्जा किया। इनका प्रयोग व्हाइट सैन्ड्स प्रूविंग ग्राउण्ड न्यू मैक्सिको में अधिक-ऊंचाई के अनुसंधान की शुरुआत करने के लिए किया गया।

बाद में अमरीकी वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित दो किस्म के राकेटों

प्रणोदकों में था। यह चार टन एथिल एलकोहल और पांच टन तरल आक्सीजन अपने साथ ले जाता था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अमरीका, ब्रिटेन और जर्मनी द्वारा अनेक छोटे-छोटे राकेटों का विकास किया गया। इनमें से अनेक ने सुधरे हुए ठोस ईंधन का प्रयोग किया।

ठोस ईंधन वाले इन राकेटों में, ईंधन राकेट मोटर के दहन-कक्ष के अन्दर रखा जाता था।

दहन कक्ष
नॉजल
ईंधन
दाहक सतह
गैस प्रवाह
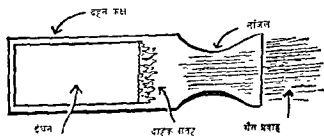
तरल ईंधन वाले राकेटों के लिए सबसे आसान व्यवस्था यह है कि वे हीलियम या नाइट्रोजन जैसी किसी निष्क्रिय गैस की टंकी का प्रयोग करें जो राकेट के मोटर में ईंधन पहुंचाए। इस तरह की व्यवस्था का डायग्राम अगले पृष्ठ पर दिया गया है।

किन्तु वी-2 या उसके बाद बननेवाले राकेटों के लिए यह व्यवस्था बहुत उपयोगी नहीं थी। ईंधन दहन-कक्ष में तेज़ी से नहीं पहुंच पाता था।

वी-2 के दहन-कक्ष में एलकोहल और तरल आक्सीजन पहुंचाने के लिए टर्बाइन चालित पम्पों का प्रयोग किया गया। यह टर्बाइन

भाप से चलता था और भाप अत्यधिक सांद्रित हाइड्रोजन पर-आक्साइड तथा पोटेशियम परमैंगनेट की प्रतिक्रिया से बायलर में पैदा होती थी।
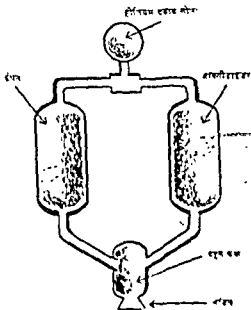
द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर अमरीकी सेनाओं ने भारी संख्या में वी-2 राकेटों पर कब्जा किया। इनका प्रयोग व्हाइट सैन्ड्स प्रूविंग ग्राउण्ड न्यू मैक्सिको में अधिक-ऊंचाई के अनुसंधान की शुरुआत करने के लिए किया गया।

बाद में अमरीकी वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित दो किस्म के राकेटों

की सहायता से यह अनुसंधान जारी रखा गया। इनमें से एक राकेट का नाम था एरोबी। यह अपेक्षाकृत छोटा राकेट था, केवल बीस फुट लम्बा। दूसरा, जिसका नाम वाइकिंग था, 45 फुट लम्बा बड़ा राकेट था।

24 मई, 1954 को, वाइकिंग ने 158 मील की ऊंचाई तक पहुंचकर एक-खंडीय राकेट का एक नया रिकार्ड कायम किया।

5

प्रोजेक्ट ग्रार्विटर

ग्रगस्त 1953 में ग्राक्सफोर्ड, इंगलैण्ड में ग्रायोजित सम्मेलन
एक ग्रमरीकी वैज्ञानिक ने सौर-परिवार के नये सदस्य बनाने
योजना पेश की। यह वैज्ञानिक थे, मैरीलैण्ड विश्वविद्यालय
राकेट-विशेषज्ञ डा० एस० फ्रेड सिंगर।

इससे पूर्व भी पृथ्वी का चक्कर काटनेवाले राकेटों को ऊपर
जने ग्रौर यहां तक कि ग्रन्तरिक्ष स्टेशन बनाने की योजना पर
चार हो चुका था। किन्तु वायुमंडल के ऊपरी भाग ग्रौर उससे
पर ग्रन्तरिक्ष का वैज्ञानिक ग्रध्ययन करने के लिए मनुष्यविहीन
पग्रह भेजने की डा० सिंगर की यह योजना पहली थी।

उन्होंने फुटबाल के ग्राकार के बराबर उपग्रह का प्रस्ताव
या। इसका नाम उन्होंने रखा "मिनिमम ग्रारबिटल ग्रनमैण्ड
टेलाइट, ग्रर्थ।" यह ग्रच्छा नाम था, क्योंकि इसमें से प्रत्येक
ब्द के पहले ग्रक्षर को मिलाने से 'माउस' शब्द बनता था। इसके
ाद, डा० सिंगर के प्रस्तावित चन्द्रमा का 'दि माउस' नाम से
उल्लेख किया जाने लगा।

उनका विचार था कि 'माउस' के ग्रन्दर वैसे ही वैज्ञानिक यंत्र
रखे जाएं जैसे ग्रधिक ऊंचाई पर जानेवाले राकेटों के ग्रग्रभाग में

पहुंच भी जा चुके थे। इन यानों के पहल को स्वचालित रेडियो ट्रांसमीटर वापस पृथ्वी पर भेज देगा।

इन उपग्रहों की सहायता से वैज्ञानिक, राकेटों से प्राप्त होनेवा जानकारी की अपेक्षा कहीं अधिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। उपग्रह कई सप्ताह तक, शायद कई महीनों तक अंतरिक्ष में रहें

1954 की गर्मियों में, वाशिंगटन में स्थल व वायुसेना के उ अधिकारियों और राकेट विशेषज्ञों की बैठक हुई। इस बैठक डा० सिंगर और डा० वर्नहर वान ब्रौन भी शामिल हुए थे।

डा० वान ब्रौन ने बैठक को आश्वासन दिया कि पांच पं वजन के 'माउस' छोड़ने के लिए प्रथम चरण के रूप में रेडस राकेट था, जिसका सेना सफल परीक्षण कर चुकी है, प्रयोग कि जा सकता है। रेडस्टोन राकेट सैनिक राकेट है जिसको वी-2 नमूने पर बनाया गया था। इसका विकास डा० वान ब्रौन उनके साथियों ने हंट्सविले अलबामा के आर्मी बैलेस्टिक मिसा एजेन्सी में किया था। रेडस्टोन में पांच टन भार के अस्त्र होते डा० वान ब्रौन की योजना अस्त्रों के स्थान पर ठोस ईंधन अनेक राकेट रखने की थी।

इस योजना को प्रोजेक्ट आर्बिटर का नाम दिया गया। प्रस्ताव किया गया कि स्थल-सेना राकेट का निर्माण करे और सेना अनुसंधानशाला "माउस" तैयार करे।

कुछ महीने बाद, अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष की विशेष सि ने विभिन्न सरकारों से, जो इस आयोजन में भाग ले रहे थे, आ किया कि वे अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष में उपग्रह छोड़ने विचार करें।

स्थल-सेना प्रोजेक्ट आर्बिटर की योजना को आगे बढ़ाना चाहती थी। नौसेना वाईकिंग राकेट को प्रथम खंड के रूप में प्रयोग कर, तीन-खंडीय राकेट का निर्माण करना चाहती थी। प्रतिरक्षा विभाग ने इन प्रस्तावों पर विचार करने के लिए नौ वैज्ञानिकों की एक समिति नियुक्त की और इन वैज्ञानिकों में से सात ने नौसेना के प्रस्ताव के पक्ष में मत दिया।

29 जुलाई, 1955 को व्हाइट हाउस से घोषणा की गई कि उपग्रह परियोजना नौसेना को सौंप दी गई है और इस परियोजना का नाम होगा प्रोजेक्ट वैनगार्ड।

निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार प्रथम उपग्रह नवम्बर 1957 में छोड़ा जाना था। यह साधारण-सा 6 इंच व्यास वाला उपग्रह बनाने की योजना थी। पूरे आकार का वैनगार्ड उपग्रह मार्च 1958 में छोड़ा जाना था।

रूसियों ने अपना प्रथम स्पुतनिक 4 अक्तूबर, 1957 को छोड़ा। अमरीकी जनता को यह जानकर आघात पहुचा और निराशा हुई कि रूस अमरीका से पहले ही उपग्रह छोड़ने में सफल हो गया है।

अमरीकी राकेट कार्यक्रम पर कांग्रेस और समाचार-पत्रों में काफी चर्चा हुई। इसका एक परिणाम यह निकला कि प्रतिरक्षा विभाग ने सेना से कहा कि वह प्रोजेक्ट आर्बिटर की योजना को आगे बढ़ाए।

6 दिसम्बर, 1957 को केप कैनेडी, फ्लोरिडा से वैनगार्ड राकेट छोड़ने का यत्न किया गया। यह राकेट मंच से कुछ फुट ऊपर उड़ा और फट गया।

योजना बनाई गई कि 19 जनवरी, 1958 से शुरू होनेवाले

सप्ताह में वैनगार्ड राकेट छोड़ने का दूसरा यत्न किया जाए। खराब मौसम के कारण राकेट छोड़ने में कई दिन का विलम्ब हो गया। तब तक राकेट के दूसरे खंड में ईंधन की टंकी चूने लगी और उसे मरम्मत के लिए निकालना पड़ा।

दूसरी ओर स्थल-सेना के विशेषज्ञों ने केप केनेडी में अपना राकेट तैयार कर लिया था। 31 जनवरी, 1958 को उसे सफलतापूर्वक छोड़ा गया और उसने अमरीका द्वारा निर्मित प्रथम उपग्रह को कक्षा में स्थापित कर दिया।

स्थल-सेना ने जिस राकेट का प्रयोग किया वह जूपीटर-सी राकेट का एक विशेष चार-खंडीय प्रतिरूप था। वह 68 फुट 6 इंच ऊंचा था। इसका डिज़ाइन डा० वान ब्रौन तथा उनके साथियों ने तैयार किया था।

प्रथम खंड संशोधित रेडस्टोन प्रक्षेपास्त्र था। यह 56 फुट लम्बा तरल ईंधन वाला राकेट था। इस अवसर के लिए उसमें सामान्य से बड़ी ईंधन टंकियां लगाई गईं। उसमें एक विशेष प्रकार का ईंधन, जिसे हाइडाइन कहते हैं, और तरल आक्सीजन का प्रयोग किया गया।

रेडस्टोन राकेट का अग्रभाग ऐसा था जो अलग हो सकता था। अन्य खंड और उपग्रह इस अग्रभाग के सिरे पर चढ़ा दिए गए। इन खंडों और उपग्रह की संयुक्त ऊंचाई 12 फुट 6 इंच थी।

राकेट की उड़ान का निर्देशन करने के लिए प्रथम खंड के अग्रभाग में जाइरोस्कोप और इलैक्ट्रानिक कन्ट्रोल लगाए गए।

दूसरे और तीसरे खंड एक सिलिंडर में थे जो एक बड़ी बाल्टी जैसा दिखाई देता था। यह बाल्टी एक धारक (बेयरिंग) पर
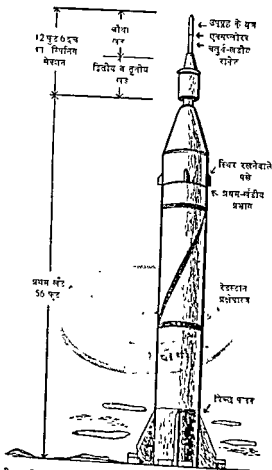
ीटर-सी राकेट जनवरी, 1958 में सफलतापूर्वक छोड़ा गया था।

चढ़ाई गई ताकि प्रथम खंड के अग्रभाग में बिजली की मोटर से उसे घुमाया जा सके।

दूसरे खंड में ठोस ईंधन वाले 11 राकेट थे, जिनमें से प्रत्येक 40 इंच लम्बा और 6 इंच व्यास वाला था। तृतीय खंड वस्तुतः दूसरे खंड का ही एक भाग था, जिसके मध्य में तीन उक्त प्रकार के राकेट थे।

चौथा खंड भी इसी तरह का ठोस ईंधन वाला राकेट था, जो बाल्टी के ऊपर चढ़ाया गया था। उपग्रह बन्दूक की गोली की शक्ल का था जो चौथे खंड से जुड़ा था। जूपीटर-सी राकेट की बनावट चित्र से साफ प्रकट हो जाती है।

ऊपर के तीन खंड और उपग्रह का निर्माण कैलिफोर्निया इंस्टिट्यूट आफ टैक्नालाजी के जेट प्रोपल्शन लैबोरेटरी में हुआ।

जूपीटर-सी राकेट को छोड़ने की तैयारी 31 जनवरी, 1958 को दोपहर में शुरू की गई। दोपहर और शाम को, एक के बाद दूसरी चीज की जांच की गई।

9 बजकर 20 मिनट पर गंत्री क्रेन राकेट मंच पर जूपीटर-सी राकेट को छोड़कर चला गया। राकेट पर तेज प्रकाश पड़ रहा था।

10 बजकर 25 मिनट पर राकेट के ऊपरी खंडों को 'स्पिन' किया गया। 10-35 पर रेडियो ट्रांसमीटर चालू कर दिए गए। 10-48 पर कार्यभारी वैज्ञानिक ने राकेट छोड़ने का बटन दबाया। इससे कई प्रतिक्रियाएं हुईं जिनका राकेट की टंकी पर दबाव पड़ा और मोटर चालू हो गया।

बटन दबाने के पौने सोलह सेकंड बाद, राकेट के तल पर ...[illegible] कर देनेवाला प्रकाश हुआ और आग की विशाल लपटें

निकलने लगीं।

विशाल राकेट धीरे-धीरे उठने लगा। फिर उसने गति पकड़ी और ऊपर आकाश में चला गया।

प्रथम खंड ने अपने ईंधन को ढाई मिनट में खत्म कर दिया और वह राकेट को 60 मील की ऊंचाई तक ले गया। 60 मील की ऊंचाई पर वह अपने अग्रभाग तथा अन्य खंडों से अलग हो गया और समुद्र में गिर गया।

प्रथम खंड का अग्रभाग, अपने साथ अन्य खंडों और उपग्रह को ले जाता हुआ, ऊपर उठता गया और अगले चार मिनट में 200 मील की ऊंचाई तक पहुंच गया।

इन चार मिनटों में, इलैक्ट्रानिक कण्ट्रोल राकेट की उड़ान को पृथ्वी की सतह के समानान्तर आने तक झुकाता रहा। अग्रभाग के पेंदे के चारों ओर नाजल थे जिनकी मदद से ऐसा कर सकना संभव हुआ। इन नाजलों से अग्रभाग की टंकी से दबी वायु के झोंके निकलते गए। इस बीच, केप केनेडी में चार यंत्रों द्वारा उसके मार्ग का पता चलाया गया। इनमें से दो रेडार थे। अन्य दो विशेष रेडियो यंत्र थे जो राकेट के रेडियो संकेत प्राप्त कर रहे थे।

इन जानकारियों के आधार पर इलैक्ट्रानिक कम्पूटरों ने केप केनेडी में पर्यवेक्षकों को बताया कि कब राकेट सबसे अधिक ऊंचाई पर पहुंचा और वह पृथ्वी के समानान्तर उड़ान भर रहा है।

उस क्षण, स्थल-सेना के एक राकेट-विशेषज्ञ डा० अर्नेस्ट स्टुलिंगर ने एक बटन दबाया जिससे राकेट को एक रेडियो आदेश भेजा गया।

इससे द्वितीय खंड के 11 ठोस ईंधन वाले राकेट दग गए। प्रथम खंड का अग्रभाग गिर गया और द्वितीय खंड 6 सेकंड तक जला

जिससे राकेट की गति और तेज हो गई।

इस प्रगति के अंत में तीसरा खंड दग्ध हो गया और द्वितीय खंड का खाली खोल गिर गया। तीसरा खंड 6 सेकंड तक जलता रहा। तत्पश्चात्, चौथा खंड बाल्टी से अलग हो गया और जलने लगा। उसने अपना ईंधन 6 सेकंड में समाप्त कर दिया। इस समय तक उसकी गति 18 हजार मील प्रतिघंटा से अधिक पहुंच चुकी थी।

चौथे खंड का खोल उपग्रह से जुड़ा रहा जबकि उपग्रह अपनी कक्षा में पृथ्वी के चारों ओर घूम रहा था।

राकेट-मंच से जूपीटर-सी के रवाना होने के बाद उपग्रह 6 मिनट 48 सेकंड तक अपनी कक्षा में रहा। कक्षा ने भूमध्यरेखा के साथ 34 डिग्री का कोण बनाया। पृथ्वी की सतह से उपग्रह की ऊंचाई सबसे कम 219 मील और सबसे अधिक 1587 मील थी। उसने 114 मिनट में पृथ्वी का एक चक्कर लगाया।

अमरीका के प्रतिरक्षा विभाग ने इस उपग्रह का नाम 'एक्सप्लोरर' रखा। चूंकि यह अत्यधिक ऊंचाई पर पृथ्वी के चक्कर लगा रहा था, इसलिए कुछेक वैज्ञानिकों का ख्याल था कि एक साल या उससे भी अधिक समय बाद ही उपग्रह को अपनी कक्षा के निचले छोर पर संभवतः पर्याप्त प्रतिरोध का सामना करना पड़े जिससे उसकी गति धीमी हो सके।

'एक्सप्लोरर' 40 इंच लम्बा और उसका व्यास 6 इंच था। इसका आकार उतना ही बड़ा था जितना कि चौथे खंड के खाली खोल का, जो उपग्रह के साथ स्थायी रूप से जुड़ा है और कक्षा में उसके साथ ही चक्कर लगा रहा है। ये दोनों मिलकर 308 पौंड वजन के हैं।

उपग्रह में यन्त्र-पैकेज को इस तरह से बनाया गया कि वह ब्रह्मांड किरणों की शक्ति, उल्कावर्षा की तीव्रता और उपग्रह के तापमान में परिवर्तनों को सह सके।

ब्रह्मांड किरणों का पता गाइगर गणक से चलता है। उपग्रह में लगे माइक्रोफोन और उसके बाहरी हिस्से में लगे एक मापक से उल्का-वृष्टि का पता लगाया जाता है। विद्युत-थर्मामीटर उपग्रह का तापमान लेते हैं।

यह सब जानकारी पृथ्वी को दो स्वचालित रेडियो ट्रांसमीटरों द्वारा 108 और 108.03 मेगासाइकिलों पर प्रसारित की जाती है।

सेना ने 5 मार्च, 1958 को केप केनेडी से जूपीटर-सी की सहायता से एक और उपग्रह छोड़ने का यत्न किया। राकेट अपराह्न 1-28 पर छोड़ा गया और वह 200 मील की ऊंचाई तक गया। किन्तु चौथा खंड प्रज्वलित नहीं हुआ और इसलिए उपग्रह कक्षा में पहुंचने के लिए पर्याप्त गति प्राप्त नहीं कर सका। जब उसने वायुमंडल के सघन क्षेत्र में पुन. प्रवेश किया तो वह उल्का की तरह जल गया। इस अभागे उपग्रह का नाम एक्सप्लोरर-2 रखा गया था।

26 मार्च, 1958 को जूपीटर-सी राकेट से एक्सप्लोरर-3 छोड़ा गया। यह एक बुरे कोण की ओर छोड़ा गया था जिससे इसकी परिक्रमा-पथ की पृथ्वी से न्यूनतम दूरी लगभग सौ मील और सर्वाधिक दूरी 2000 मील थी।

चूंकि यह उपग्रह वायुमंडल में इतने नीचे उतर आया था, अतः यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह अधिक दिन तक कायम रहेगा।

6

प्रोजेक्ट वैनगार्ड

प्रोजेक्ट वैनगार्ड 1955 की गर्मियों में शुरू किया गया। इस वर्ष, 29 जुलाई को, व्हाइट हाउस ने घोषणा की कि नौसेना अनुसंधानशाला को निर्देश दिया गया है कि वह एक ऐसे राकेट का डिज़ाइन तैयार करे जिससे कम से कम 6 उपग्रह छोड़े जा सकें।

एक प्रमुख राकेट विशेषज्ञ डा० जान पी० हेगन को इस योजना का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

वैनगार्ड राकेट नामक एक तीन-खंडीय राकेट तैयार किया गया। रायफल की गोली की शक्ल का यह राकेट 72 फुट लम्बा है और उसका व्यास तल पर केवल 45 इंच है। इसका वज़न 11 टन है।

44 फुट लम्बा प्रथम खंड वाइकिंग राकेट का संशोधित रूप है। यह तरल ईंधन वाला राकेट है, जिसमें मिट्टी का तेल और आक्सीजन प्रयुक्त किया जाता है। वाष्प इंजिन से चालित पम्प द्वारा यह ईंधन दहन-कक्ष में पहुंचाया जाता है।

भाप हाईड्रोजन-पेरक्साइड की सहायता से पैदा होती है। इसमें हीलियम गैस भी होती है, जो ईंधन प्रणाली को चालू करने के लिए दबाव पैदा करती है।

राकेट को स्थिर रखने या चलाने के लिए पंख या पिच्छफलक नहीं होते। इसके स्थान पर, प्रथम खंड का मोटर इस तरह

तीन खंडीय राकेट वैनगार्ड, जिसे नौसेना ने तैयार किया था।
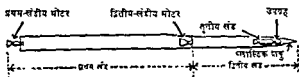
आरोप्य होता है कि वह आसानी से घूम सके, और राकेट से निकल रही जलनेवाली गैसों की जेट की दिशा में ही बदल जाता है। मोटर इस प्रकार छल्ले पर चढ़ा होता है :
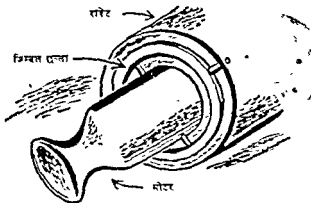
मोटर दो बियरिंगों पर एक छल्ले में लटका होता है और स्वयं यह छल्ला अन्य दो बियरिंगों पर, जो पहले के दो बियरिंगों से

समकोण बनाते हैं, लटका होता है। हाइड्रोलिक कण्ट्रोल छल्ले और मोटर की गति को संचालित करते हैं।

तीन ऐसी संभावनाएं हैं जिनसे राकेट अपने पथ से हट सकता है। ये संभावनाएं हैं : 'पिच', 'यौ' तथा 'रॉल'। राकेट के अग्रभाग की ऊपर-नीचे की गति को 'पिच' कहते हैं। बायें से दायीं ओर गति को 'यौ' कहा जाता है। राकेट की लम्बी धुरी के चारों ओर घूमने की गति 'रॉल' कहलाती है। नीचे आरेख (डायग्राम) में यह दिखाया गया है :
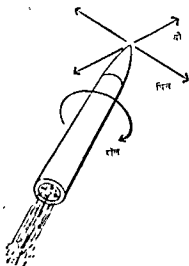
[illegible] को उसके छल्ले में घुमाकर 'पिच' तथा 'यौ' पर नियंत्रण [illegible] है। ईंधन-पम्प को संचालित करनेवाले टर्बाइन से

निष्कासित वाष्प की सहायता से 'रॉल' पर नियंत्रण रखा जाता है। भाप राकेट तल के चारों ओर छोटे-छोटे जेटों से निकलती है।

वैनगार्ड का दूसरा खंड 28 फुट लम्बा होता है। यह भी तरल-ईंधन वाला राकेट है जिसकी मोटर छल्ले पर फिट की गई होती है। इसमें ईंधन डाइमेथिल हाइड्राजिन और ऑक्सीडाइज़र निट्रिक अम्ल होता है।

चूंकि दूसरा खंड प्रथम खंड से छोटा होता है, इसलिए उसे विस्तृत पम्पिंग प्रणाली की आवश्यकता नहीं होती। मोटर के दहन-कक्ष में प्रणोदक पहुंचाने के लिए दबाव डालकर हीलियम का उपयोग किया जाता है।

दूसरे खंड को उड़ान के दौरान डगमगाने से रोकने के लिए, छोटे-छोटे अनेक जेट होते हैं जिनके माध्यम से एक टंकी से प्रोपेन गैस निकलती है।

तीसरा खंड ठोस ईंधन वाला एक छोटा-सा तीन फुट का राकेट होता है। यह दूसरे खंड के अग्रभाग के अन्दर फिट किया होता है। उपग्रह तीसरे खंड के सिरे से जुड़ा होता है।

वैनगार्ड राकेट को नियंत्रित करनेवाला इलैक्ट्रानिक मस्तिष्क द्वितीय खंड में, तीसरे खंड के बिलकुल पीछे, लगा होता है। नियंत्रण-प्रणाली के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग का नाम है निर्देश जाइरो।

जाइरोस्कोप एक पहिया होता है जो जिम्बल (छल्ला) में इस तरह से व्यवस्थित होता है कि जिस दिशा को चाहे मुड़ सके। जिम्बल में फिट किया गया एक सामान्य जाइरो ऐसा दिखाई देता है :
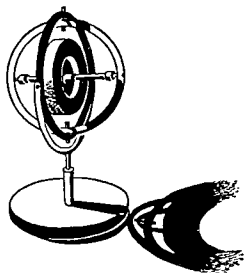
किसी भी दिशा में जब यह पहिया चलना शुरू करता है तो अपने सहायक उपकरणों की गति के बावजूद उसी दिशा में रहता है। इसी कारण राकेट के पथ में किसी हेरफेर को, वैनगार्ड राकेट में लगा निर्देश जाइरो तुरन्त रजिस्टर कर लेता है। जाइरो इसका पता लगाता है कि अंतरिक्ष में राकेट कहां पर है और उसकी तुलना निर्धारित मार्ग से करता है।

अपने विभिन्न इलैक्ट्रानिक नियंत्रणों के माध्यम से जाइरो उन यंत्रों को सक्रिय करता है जो मोटर और सहायक रॉल जेट पर नियंत्रण करते हैं।

अन्तरिक्ष में उपग्रह छोड़ने में वैनगार्ड राकेट की सफलता,

राकेट के इलैक्ट्रानिक मस्तिष्क के अधीन विभिन्न जटिल यंत्रों के ठीक-ठीक कार्य करने पर निर्भर हैं। केप केनेडी से वैनगार्ड राकेट के छोड़ते समय घटनेवाली अनेक घटनाओं को हम देख सकते हैं।

पतला, चमकता, चांदी की विशाल पेंसिल के समान राकेट मंच पर खड़ा है। पास ही कंक्रीट से बने कक्ष में वैज्ञानिक और इंजीनियर नियंत्रण-पैनल के मीटरों को अंतिम क्षण जांच रहे हैं।

राकेट छोड़ने का समय जैसे-जैसे नजदीक आता है, लाउड-स्पीकरों से एक आवाज गूंज उठती है—"सभी केन्द्र सुनें, प्रोजेक्ट वैनगार्ड एक्स-2 मिनट पर छूटेगा। दो मिनट बाद। ध्यान दें।"

यही घोषणा कैरिबियन सागर तथा दक्षिण अटलांटिक महासागर स्थित द्वीपों के प्रेक्षण-केन्द्रों को केबलों द्वारा भेजी जाती है। ग्रांड बहामा, सैन सैल्वाडोर, मयागुआना, ग्रांड टर्क, प्यूर्टो रिको और एंटीगुआ में वैनगार्ड राकेट को दूरबीनों, रेडियो और रेडार से देखने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

एक मिनट बाद, लाउड-स्पीकर घोषणा करता है :

"सभी केन्द्र, वैनगार्ड प्रोजेक्ट 60 सेकंड में उड़नेवाला है। 60 सेकंड। ध्यान दें।"

अब टाइमकीपर एक-एक करके सेकंड गिनता है। वह गिनना खत्म करता है—"पांच···चार···तीन···दो···एक···छोड़ो।"

राकेट के तल से अचानक चौंधिया देनेवाला प्रकाश, बिजली की चमक से भी अधिक तेज, निकलता है। प्रथम खंड के मोटर के चालू होते ही भारी गड़गड़ाहट की आवाज आती है। धीरे-धीरे राकेट अपने अग्निस्तम्भ पर ऊपर आकाश में उठने लगता है।

राकेट की उड़ान को स्थिर रखने के लिए जैसे ही मोटर अपने

जिम्बल में घूमता है, आग की लपटें निकलती हैं।

विशाल राकेट सीधा आकाश की ओर बढ़ता है। लेकिन दस सेकंड बाद, स्वचालित नियंत्रण प्रथम खंड के मोटर को उसके जिम्बल में डाल देता है और राकेट अपने निर्धारित पथ की ओर झुकने लगता है।

अब वह दक्षिण-पूर्व की ओर एक वक्र में जा रहा है और उस मार्ग पर बढ़ रहा है जो भूमध्यरेखा से ३५ डिग्री का कोण बनाता है। परन्तु वह हर क्षण ऊपर आकाश में उठता जा रहा है।

केप केनेडी से रवाना होने के ढाई मिनट बाद, राकेट फ्लोरिडा से तीस मील दक्षिण-पूर्व की ओर और अटलांटिक महासागर के 36 मील ऊपर पहुंच जाता है। उसकी गति लगभग 4000 मील प्रतिघंटा होती है।
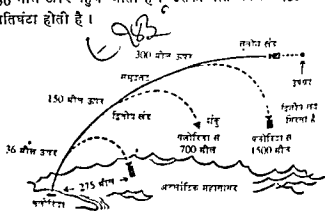
इसमें वैनगार्ड राकेट के हर खंड का मार्ग दिखाया गया है।

यहां तक पहुंचने में, जिसे राकेट विशेषज्ञ 'बर्न आउट' कहते हैं,

प्रथम खंड अपना सारा ईंधन प्रयुक्त कर चुका होता है।

अब प्रथम खंड का केवल अचल भार रह जाता है और इसलिए राकेट का इलैक्ट्रानिक मस्तिष्क कार्रवाई शुरू करता है। वह थोड़ा-सा विस्फोटक चार्ज करता है जिससे प्रथम और द्वितीय खंडों को एक साथ जोड़े रखनेवाले बोल्ट अलग हो जाते हैं। साथ ही, इलैक्ट्रानिक मस्तिष्क द्वितीय खंड के मोटर को चालू कर देता है और दूसरा खंड प्रथम खंड से अलग होने लगता है।

कुछ देर तक प्रथम खंड ऊपर बढ़ना जारी रखता है और फिर फ्लोरिडा के तट से लगभग 275 मील दूर महासागर में गिर जाता है।

दूसरा खड अपना ईंधन ढाई मिनट में खत्म कर देता है। तब तक वह 150 मील की ऊंचाई पर पहुंच चुका होता है और उसकी गति 11,000 मील प्रतिघंटा तक पहुच जाती है।

इसके शीघ्र बाद जब द्वितीय खंड जलने लगता है तो वह इतनी ऊंचाई तक पहुंच चुका होता है जहां वायुमंडल इतना विरल होता है कि संरक्षण-शंकु की आवश्यकता नही रह जाती। स्वचालित नियंत्रण विस्फोटक चार्ज करते हैं जिससे उसके दो भाग हो जाते हैं और वह गिर जाता है।

द्वितीय खंड अपने ईंधन के समाप्त हो जाने के बाद भी ऊपर बढ़ता जाता है। अब इलैक्ट्रानिक मस्तिष्क को अपना सबसे कठिन कार्य करना होता है। निर्देश जाइरो से संकेत लेकर, उसे द्वितीय खंड को बिलकुल निर्धारित पथ पर ले जाना चाहिए।

ऐसा करने के लिए वह सहायक जेटों की सहायता लेता है जिनके माध्यम से वह हीलियम को, जिसका प्रयोग पहले ईंधन

टंकी पर दबाव डालने के लिए किया गया था, बाहर फेंकता है।

द्वितीय खंड अब 300 मील की ऊंचाई तक पहुंच चुका है और फ्लोरिडा के तट से 700 मील दूर अपनी कक्षा में पृथ्वी की सतह के समानान्तर चक्कर काट रहा है। उसकी गति घटकर 9,000 मील प्रतिघंटा हो गई है।

उपग्रह छोड़ने की अन्तिम घटना का समय अब आ चुका है।

पांच इंच से भी कम लम्बे राकेट उस चाक से सम्बद्ध हैं जो तीसरे खंड को जोड़े हुए हैं। अब ये राकेट छूटते हैं और वे तीसरे खंड को गोल घुमाना शुरू कर देते हैं। चूंकि उपग्रह तीसरे खंड से जुड़ा होता है, इसलिए वह भी चक्कर काटना शुरू कर देता है।

अब तीसरा खंड छूटता है और वह दूसरे खंड से अलग हो जाता है। उसी समय, द्वितीय खंड के अग्रभाग में लगे अतिरिक्त छोटे राकेट, जिन्हें 'रेट्रो राकेट' कहते हैं, छूटते हैं। ये ब्रेक का काम करते हैं और द्वितीय खंड की गति धीमी कर देते हैं। द्वितीय खंड फ्लोरिडा तट से लगभग 1,500 मील दूर महासागर में गिर पड़ता है।

तीसरे खंड में कोई निर्देशक यंत्र नहीं होता। चूंकि वह चक्कर काट रहा होता है, इसलिए वह अपने मार्ग से हटता नहीं, जैसे कि रायफल की चक्कर खाती हुई गोली अपने मार्ग से नहीं हटती।

तीस सेकंड में तीसरे खंड की गति बढ़कर 18,000 मील तक पहुंच जाती है और उसका ईंधन समाप्त हो चुका होता है। इस स्थल पर विस्फोटक बोल्ट, जो उपग्रह को उसके स्थान पर रोके हुए है, दगता है और उपग्रह स्वतन्त्र हो जाता है। एक स्प्रिंग - को झटका देता है और अब वह स्वयं अपने मार्ग पर बढ़ ।

स्प्रिंग जो झटका उपग्रह को देता है, उससे उपग्रह की गति तीन फुट प्रति सेकंड के हिसाब से बढ़ जाती है।

प्रथम वैनगार्ड उपग्रह, जिसका नाम वैनगार्ड-I है, 17 मार्च 1958 को सफलतापूर्वक छोड़ा गया। वैनगार्ड राकेट, जो उपग्रह को ऊपर ले गया, केप केनेडी से प्रातः सवा सात बजे छोड़ा गया।

वैनगार्ड-I पूरे आकार का वैनगार्ड उपग्रह नहीं है। उसका व्यास केवल 6·4 इंच है। इसे छोड़ना असामान्य रूप से सफल रहा। उपग्रह अत्यधिक ऊंचाई तक पहुंचा।

अपने सबसे निचले विन्दु पर वह पृथ्वी से 404 मील और सबसे ऊंचे विन्दु पर 2,446 मील ऊपर है। इस ऊंचाई के कारण वैज्ञानिकों को आशा है कि वैनगार्ड-I दशाब्दियों तक, शायद एक या दो शताब्दि तक, कक्षा में रहेगा।

7

वैज्ञानिक उपग्रह

पृथ्वी का चक्कर लगाने के लिए जो चमकदार कृत्रिम चांद भेजे जाते हैं उनसे संभव है कि नये वैज्ञानिक आश्चर्यों का पता चल सके जिनके विषय में अभी हम कुछ कल्पना नहीं कर सकते। ऐसा इसलिए संभव है कि ये उपग्रह बड़े शक्तिशाली वैज्ञानिक यंत्र होते हैं जिनका कार्य हमें पृथ्वी, उसके वायुमंडल, सूर्य, ब्रह्माण्ड किरणों और उल्काओं की निरंतर वर्षा के विषय में नई जानकारी देना है।

उपग्रह हमें उन बातों के विषय में भी बताएंगे जिनकी जानकारी यात्री-वाहक राकेटों और मानवयुक्त अन्तरिक्ष स्टेशनों के निर्माण से पूर्व जरूरी है। अब तक अनेक उपग्रह अंतरिक्ष में भेजे जा चुके हैं और उनसे महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की गई है।

अमरीकी वैज्ञानिकों ने वैनगार्ड उपग्रह का निर्माण 1955 में शुरू किया। ये उपग्रह वैज्ञानिक कौशल के चमत्कार हैं। प्रत्येक उपग्रह में इलैक्ट्रानिक मस्तिष्क और चुम्बकीय स्मरणशक्ति के अतिरिक्त रेडियो-आवाज भी होती है।

ये उपग्रह अपने साथ जो यंत्र ले जाते हैं उनके विषय में आश्चर्य-जनक बात है उनका छोटा आकार। इनमें से कुछेक यंत्रों का भार तो कुछ औंस ही होता है। इनका निर्माण उतनी ही कुशलता और

सूक्ष्मता से किया जाता है जितना कि एक अच्छी घड़ी का।

प्रत्येक उपग्रह मैग्नीशीयम से बना 20 इंच व्यास का खोखला गोला होता है।

बाहरी भाग स्वर्ण-पर्त का होता है जिस पर अलुमीनियम का आवरण चढ़ा होता है जिससे वह शीशे की तरह चमकने लगता है। उसमें रेडियो ट्रांसमीटर के लिए 4 एंटेना होते हैं, जिनमें से प्रत्येक 24 इंच लम्बा होता है। जब उपग्रह राकेट में होता है तो ये एंटेना पीछे की ओर मुड़ जाते हैं परन्तु जैसे ही उपग्रह राकेट से अलग होता है, ये अपनी ठीक स्थिति पर आ जाते हैं।

अपने यंत्रोंसहित उपग्रह का भार साढ़े इक्कीस पौंड होता है। भिन्न किस्म के उपग्रहों में भिन्न किस्म के यंत्र ले जाए जाते हैं। सिलिंडर के तल पर पारद-बैटरियां होती हैं जो रेडियो तथा अन्य यंत्रों को विद्युत शक्ति प्रदान करती हैं।

आकार छोटा होने के कारण रेडियो का नाम 'मिनिट्रैक' रखा गया है। इसका वजन केवल 13 औंस होता है। लेकिन छोटे आकार के बावजूद इसका रेंज चार हजार मील होता है।

चुम्बकीय स्मृति वाले इलैक्ट्रानिक मस्तिष्क रेडियो ट्रांसमीटर से जुड़ा रहता है। यह 'टेलिमीटरिंग प्रणाली' का स्वरूप ग्रहण करता है।

विभिन्न वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा प्राप्त जानकारी चुम्बकीय स्मृति इकाइयों में जमा की जाती है। इसके बाद प्रत्येक जानकारी रेडियो ट्रांसमीटर को पहुंचायी जाती है, जिससे रेडियो संकेतों के 'बीप बीप' में परिवर्तन होता रहता है।

अमरीका तथा अन्यत्र संकेत प्राप्त करनेवाले केन्द्र मिनिट्रैक

7

वैज्ञानिक उपग्रह

पृथ्वी का चक्कर लगाने के लिए जो चमकदार कृत्रिम चांद भेजे जाते हैं उनसे संभव है कि नये वैज्ञानिक आश्चर्यों का पता चल सके जिनके विषय में अभी हम कुछ कल्पना नहीं कर सकते। ऐसा इसलिए संभव है कि ये उपग्रह बड़े शक्तिशाली वैज्ञानिक यंत्र होते हैं जिनका कार्य हमें पृथ्वी, उसके वायुमंडल, सूर्य, ब्रह्माण्ड किरणों और उल्काओं की निरंतर वर्षा के विषय में नई जानकारी देना है।

उपग्रह हमें उन बातों के विषय में भी बताएंगे जिनकी जानकारी यात्री-वाहक राकेटों और मानवयुक्त अन्तरिक्ष स्टेशनों के निर्माण से पूर्व जरूरी है। अब तक अनेक उपग्रह अन्तरिक्ष में भेजे जा चुके हैं और उनसे महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की गई है।

अमरीकी वैज्ञानिकों ने वैनगार्ड उपग्रह का निर्माण 1955 में शुरू किया। ये उपग्रह वैज्ञानिक कौशल के चमत्कार हैं। प्रत्येक उपग्रह में इलेक्ट्रानिक मस्तिष्क और चुम्बकीय स्मरणशक्ति के अतिरिक्त रेडियो-आवाज भी होती है।

ये उपग्रह अपने साथ जो यंत्र ले [illegible] के विषय में आश्चर्य-जनक बात है। [illegible] के यंत्रों का भार तो कुछ औंस ही [illegible] की कुशलता और

क्षमता से किया जाता है जितना कि एक अच्छी घड़ी का।

प्रत्येक उपग्रह मैग्नीशीयम से बना 20 इंच व्यास का खोखला ला होता है।

बाहरी भाग स्वर्ण-पर्त का होता है जिस पर अलुमीनियम का ावरण चढ़ा होता है जिससे वह शीशे की तरह चमकने लगता है।

रेडियो ट्रांसमीटर के लिए 4 एंटेना होते है, जिनमें से प्रत्येक इ लम्बा होता है। जब उपग्रह राकेट में होता है तो ये एंटेना ी ओर मुड़ जाते है परन्तु जैसे ही उपग्रह राकेट से अलग], ये अपनी ठीक स्थिति पर आ जाते हैं।

पने यंत्रोंसहित उपग्रह का भार साढ़े इक्कीस पौंड होता है। किस्म के उपग्रहों में भिन्न किस्म के यंत्र ले जाए जाते हैं। र के तल पर पारद-बैटरियां होती है जो रेडियो तथा अन्य ो विद्युत शक्ति प्रदान करती हैं।

ाकार छोटा होने के कारण रेडियो का नाम 'मिनिट्रैक' रखा । इसका वजन केवल 13 औंस होता है। लेकिन छोटे आकार जूद इसका रेंज चार हज़ार मील होता है।

म्बकीय स्मृति वाले इलैक्ट्रानिक मस्तिष्क रेडियो ट्रांसमीटर रहता है। यह 'टेलिमीटरिंग प्रणाली' का स्वरूप ग्रहण है।

भिन्न वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा प्राप्त जानकारी चुम्बकीय स्मृति ं में जमा की जाती है। इसके बाद प्रत्येक जानकारी रेडियो र को पहुंचायी जाती है, जिससे रेडियो संकेतों के 'बीप बीप' र्तन होता रहता है।

रीका तथा अन्यत्र संकेत प्राप्त करनेवाले केन्द्र मिनिट्रैक

रेडियो के संकेतों को चुम्बकीय टेपरिकार्डों पर दर्ज करते हैं।

इसके बाद टेप का प्रयोग फिल्मों पर स्पष्ट कटावदार लाइनों के पैटर्न तैयार करने के लिए किया जाता है। इन लाइनों के पैटर्न से, वैज्ञानिक उपग्रह द्वारा एकत्रित जानकारी पढ़ते हैं।

विभिन्न उपग्रहों में रखे गए यंत्रों का छोटा होना ज़रूरी है। परन्तु उन्हें इस प्रकार का होना चाहिए कि उनके द्वारा प्राप्त जानकारी को विद्युत-आवेग में परिणत किया जा सके जिसे कि टेलिमीटरिंग प्रणाली संचालित कर सके।

उपग्रह में एक साधारण थर्मामीटर का उपयोग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाते हुए उसे दिन में सूर्य की भयकर गर्मी और रात में बाह्याकाश की ठंड का सामना करना पड़ता है।

उपग्रह में जिस थर्मामीटर का प्रयोग किया जाता है उसे 'थर्मिस्टर' कहते हैं। यह उपग्रह के बाहर लगी धातु की एक छोटी-सी चकती होती है। इसके माध्यम से विद्युतधारा भेजी जाती है।

तापमान के ऊपर या नीचे जाने के साथ ही चकती का विद्युत-प्रतिरोध बदलता है और इस तरह विद्युतधारा की शक्ति भी बदल जाती है। विद्युतधारा का यह परिवर्तन ही चुम्बकीय स्मृति इकाई में संग्रहीत किया जाता है और बाद में मिनिट्रैक रेडियो द्वारा पृथ्वी को प्रसारित किया जाता है।

वैज्ञानिक यह जानने के लिए बहुत उत्सुक हैं कि उपग्रह उल्का-वर्षा के बारे में क्या रहस्योद्घाटन करता है। *अरबों उल्काएं* प्रतिदिन पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करती हैं। इनमें से अधिकांश के आकार धूल के कण से लेकर रेत के कण के बराबर होते हैं।

किन्तु कुछेक बड़े होते हैं।

उल्काओं के विषय में तीन यंत्र पता चलाते हैं। इनमें से एक है क्षरण-मापक। यह उपग्रह के बाहर लगा धातु का एक छोटा फीता-सा होता है। उल्काओं के असर से यह घिसने लगता है।

इस फीते से विद्युतधारा बहती है और फीते के घिसने के साथ ही विद्युतधारा की शक्ति निरन्तर घटती जाती है। शक्ति में इस कमी को चुम्बकीय स्मृति इकाई दर्ज कर लेती है और बाद में इसे वैज्ञानिकों को प्रसारित कर दिया जाता है।

उल्काओं का पता चलाने वाला दूसरा यंत्र है माइक्रोफोन, जो उपग्रह के खोल के अन्दर होता है। यह उपग्रह से टकराने वाली उल्काओं की आवाज़ दर्ज करता है।

तीसरा यंत्र उपग्रह के अन्दर होता है जिसे दबाव-मापक यंत्र कहते हैं। यदि कोई बड़े आकार की उल्का उपग्रह के खोल में छेद कर दे तो यह यंत्र इस बात को दर्ज कर लेता है।

उपग्रह के खोल में लगा एक मीटर सूर्य की पराबैंगनी किरणों की शक्ति दर्ज करता है।

एक उपग्रह विशेष रूप से ब्रह्माण्ड किरणों की शक्ति मापने के लिए तैयार किया गया है। इस उद्देश्य के लिए यह अपने साथ गाइगर-गणक ले जाता है।

एक अन्य उपग्रह पृथ्वी की सतह की सूक्ष्म जांच के लिए विद्युत नेत्र या फोटो-विद्युत सैल का उपयोग करेगा। यह बादलों के जमाव के विषय में जानकारी दर्ज करेगा। इस जानकारी से वैज्ञानिकों को मौसमविषयक कई समस्याओं को हल करने में जानकारी मिलेगी।

पृथ्वी से रेडियो, रेडार तथा दूरबीनों से वैनगार्ड उपग्रह का पता लगाने के लिए विस्तृत व्यवस्था की गई है। प्रत्येक उपग्रह की यथार्थ कक्षा का पता लगाने से पर्याप्त महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होगी।

इस उद्देश्य के लिए, उत्तरी अमरीका के पूर्वी तट और दक्षिणी अमरीका के पश्चिमी तट पर 12 रेडियो स्टेशन स्थापित किए गए हैं। इनका नाम रखा गया है मिनिट्रैक रिसीविंग स्टेशन।

प्रत्येक स्टेशन में दो-दो करके आठ एंटेना होते हैं। इनकी सहायता से उपग्रह की यथार्थ स्थिति का पता लगाना संभव हो जाता है। ये स्टेशन प्राप्त सूचना को वाशिंगटन भेजते हैं जहां उसका उपयोग उपग्रह की कक्षा का अनुमान लगाने में किया जाता है।

इसके बाद शक्तिशाली दूरबीनों की, जिन्हें इस उद्देश्य के लिए विशेष रूप से निर्मित किया गया है, सहायता से उसकी निश्चित कक्षा निर्धारित की जाती है। अमरीका के विभिन्न भागों में अव्यवसायी ज्योतिर्विद छोटे-छोटे दूरबीनों द्वारा उपग्रह का पता लगाने के लिए दलों में संगठित हो गए हैं। इस कार्यक्रम का नाम रखा गया है 'आपरेशन मूनवाच'।

उपग्रह के पथ का पता लगाने वाले शक्तिशाली रेडार उपकरणों में बोस्टन के समीप मिलस्टोन हिल पर मैसाच्यूसेट्स इंस्टिट्यूट आफ टैक्नालाजी द्वारा निर्मित एक विशाल रेडार भी है। इसमें 90 फुट ऊंचे बुर्ज की चोटी पर इस्पात का 80 फुट व्यास का विशाल 'कटोरा' लगा हुआ है।

इन उपग्रहों की निश्चित कक्षा के निर्धारण से वैज्ञानिक विश्व के अधिक सही नक्शे बना सकेंगे और इस बात का अनुमान लगा सकेंगे कि पृथ्वी की यथार्थ आकृति क्या है।

हम यह जानते हैं कि ध्रुवों पर पृथ्वी समतल है लेकिन भूमध्य-रेखा पर वह उभरी है। पृथ्वी के अपनी धुरी के चारों ओर घूमने का ही यह परिणाम है। किन्तु हम यह नहीं जानते कि पृथ्वी कितनी उभरी हुई है।

सर्वे-प्रणालियों की सहायता से सावधानतापूर्वक बनाये गए भू-क्षेत्रों के नक्शे बहुत अच्छे हैं। परन्तु ये प्रणालियां समुद्रों पर लागू नहीं की जा सकती और ऐसा विश्वास किया जाता है कि समुद्रों में अनेक द्वीपों का स्थान गलत दिखाया गया है और इनमें एक मील तक का हेरफेर हो सकता है।

नक्शे में इस प्रकार की गलती एक ऐसे विमान-चालक के लिए, जो महासागर के ऊपर लम्बी उड़ान भर रहा हो और किसी छोटे से द्वीप की ओर जा रहा हो, गम्भीर हो सकती है।

लेकिन एक बार उपग्रह की कक्षा का निश्चित पता चल जाने पर, उस रेडियो स्टेशन के निश्चित स्थान का पता लगाया जा सकता है जो उपग्रह से संकेत प्राप्त कर रहा है। इस तरीके से उन विशेष रेडियो स्टेशनों के निश्चित स्थान का पता चल जाएगा जिन्हें प्रशान्त महासागर के विभिन्न द्वीपों में अमरीका स्थापित कर रहा है। इसमें क्वाजेलीन, लुजन, वेक, गौम और अमरीकी समोआ शामिल हैं।

उपग्रह की कक्षा के संदर्भ में इस पृथ्वी की मध्यरेखा की ठीक-ठीक स्थिति का भी पता चल सकेगा।

एक बार इसका पता चल जाने पर, वैज्ञानिक इस बात का अनुमान लगा सकेंगे कि पृथ्वी के मध्य से प्रत्येक केन्द्र कितनी दूर है। इस जानकारी से पृथ्वी की यथार्थ आकृति के विषय में पता चल सकेगा।

8

रूसी स्पुतनिक

शायद 1957 के अंतिम महीनों में सूर्य छिपने के कुछ समय बाद या सूर्योदय से कुछ पहले आपने किसी एक रूसी स्पुतनिक को आकाश में जाते देखा होगा। अत्यन्त चमकीले तारे की तरह दिखाई देने वाला यह स्पुतनिक आकाश में क्षितिज के एक छोर से दूसरे छोर तक की यात्रा पांच मिनट में कर लेता था।

यदि तब आपके पास शार्ट वेव का ऐसा रेडियो या जिसे ठीक-ठीक तरंग-लम्बाई (वेव लैंग्थ) पर चलाया जा सकता था तो आपने स्पुतनिक के रेडियो की बीप-बीप की आवाज भी सुनी होगी।

विश्व के विभिन्न भागों में हजारों लोगों ने प्रथम दो रूसी स्पुतनिकों को देखा या उनकी आवाज़ सुनी। हरएक इनको उनके रूसी नाम 'स्पुतनिक' से पुकारने लगे और वे स्पुतनिक-एक और स्पुतनिक-दो के नाम से विख्यात हुए।

स्पुतनिक-एक को रूस ने 4 अक्तूबर, 1957 को गुप्त रूप से छोड़ा। उसकी प्रथम 'बीप' की आवाज़ अमरीका में रेडियो द्वारा उसी शाम 8 बजकर 7 मिनट पर प्राप्त की गई।

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष के सदस्य देश इस बात पर सह-
[illegible] के रेडियो 108 मेगासाइकिल की आवृत्ति

का उपयोग करेंगे। किन्तु पता चला कि स्पुतनिक-एक 20 तथा 40 मेगासाइकिल की आवृत्तियों पर ब्राडकास्ट कर रहा है।

इस बात का पता चलते ही कि स्पुतनिक-एक आकाश में है वाशिंगटन-स्थित स्मिथसोनियन खगोल-भौतिकी वेधशाला ने विश्व के सभी भागों को मूनवाच प्रावजर्वरों (उपग्रह की टोह लेने वाले) को टेलीफोन, तार तथा केबलों द्वारा सूचित करना शुरू कर दिया। इस वेधशाला के वैज्ञानिक रात-भर व्यस्त रहे और प्रातःकाल से पूर्व ही उन्होंने उपग्रह की टोह लेने वाले विश्व के एक सौ से अधिक दलों से सम्पर्क स्थापित कर लिया था।

अमरीकी वैज्ञानिकों ने वैनगार्ड उपग्रहों की टोह लेने के लिए जो 12 मिनिट्रैक रेडियो स्टेशन स्थापित किए थे, उनको 108 मेगासाइकिल से शीघ्र ही उन आवृत्तियों में परिणत किया गया जिनका प्रयोग स्पुतनिक कर रहा था।

स्पुतनिक-एक जिस परिक्रमा-पथ पर चक्कर लगा रहा था, वह भूमध्य रेखा से 65 डिग्री का कोण बनाता था। परिक्रमा-पथ पूर्ण गोलाकार न होकर अण्डाकार था, जिसे कि दीर्घवृत्त या इलिप्स कहते हैं।

यदि उपग्रह पृथ्वी की सतह के बिलकुल समानान्तर छोड़ा गया और उसकी गति बिलकुल ठीक रही तो उसका परिक्रमा-पथ बिल्कुल गोल होगा। दिशा या गति में मामूली परिवर्तन से ही परिक्रमा-पथ अण्डाकार हो जाएगा।

एक केन्द्र बिन्दु, जैसा कि वृत्त का होता है, होने के स्थान पर, अण्डाकार या दीर्घवृत्त में दो बिन्दु होते हैं जिन्हें 'फोकी' कहा जाता है। पृथ्वी तथा चन्द्र तक सूर्य की परिक्रमा अंडाकार-पथ पर ही

करते है ।

यह पता चला कि स्पुतनिक-एक के परिक्रमा-पथ का सबसे निचला बिन्दु पृथ्वी से 150 मील दूर था । इस बिन्दु को 'पेरीगी' कहते हैं । पृथ्वी से सबसे ऊंचा बिन्दु 550 मील दूर था । इस बिन्दु को 'एपोजी' कहते हैं ।

पृथ्वी से चन्द्रमा के निकटतम और दूरतम बिन्दुओं के लिए 'पेरीगी' और 'एपोजी' शब्दों का प्रयोग काफी पहले से किया जाता रहा है ।

रूसी समाचार-पत्र 'प्रावदा' ने बताया कि स्पुतनिक-एक तीन खंडीय राकेट से छोड़ा गया है । इस उपग्रह का व्यास 23 इंच था और वजन 184 पौंड । उपग्रह के भारी वजन से अमरीकी वैज्ञानिकों को बड़ा आश्चर्य हुआ । इसका मतलब यह था कि उपग्रह छोड़ने के लिए एक विशाल और शक्तिशाली तीन-खंडीय राकेट प्रयोग में लाया गया ।

शीघ्र ही इस बात का पता चला कि राकेट का तीसरा खंड और शंकु (नोज कोन), जिन्होंने राकेट छोड़ने के दौरान स्पुतनिक का बचाव किया था, भी स्पुतनिक के साथ ही पृथ्वी का चक्कर लगा रहे हैं ।

18,000 मील की गति से चक्कर लगाते हुए, स्पुतनिक 96 मिनट में पृथ्वी का एक चक्कर लगा रहा था । चूंकि पृथ्वी स्वयं [illegible] धुरी पर घूमती है अतः स्पुतनिक अपनी हर परिक्रमा में [illegible] के ऊपर भिन्न-भिन्न मार्गों से गुजरा ।

स्पुतनिक के क्रमिक मार्गों को आगे नक्शे में दिखाया गया है । 150 मील की ऊंचाई पर उपग्रह की गति को अवरुद्ध करने

क लिए पर्याप्त हवा रहती है । परिणामत , स्पुतनिक के परिक्रमा-
थ में परिवर्तन शुरू हो गया और वह धीरे-धीरे पृथ्वी की सतह के
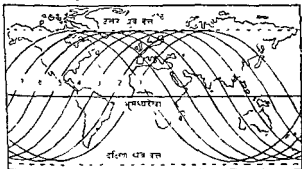
पृथ्वी के घुमाव के कारण, स्पुतनिक हर बार नए मार्ग से गुजरा।

समीप आने लगा । यही स्थिति राकेट के तृतीय खंड और शंकु की भी हुई।

अन्ततः, वे निरन्तर नीचे आते रहे और सघन वायु में प्रविष्ट हो गए जहां घर्षण से वे उल्काओं की तरह जल गए । ऐसा ख्याल किया जाता है कि तीसरे खंड का एक अवशिष्ट भाग 1 दिसम्बर 1957 के शीघ्र बाद पृथ्वी पर गिर पड़ा ।

स्पुतनिक-दो 3 नवम्बर, 1957 को छोड़ा गया । इसका वजन आधे टन से अधिक 1,120 पौंड था । यह स्पुतनिक गोलीय उपग्रह न होकर, वस्तुतः निर्माण-राकेट का तीसरा खंड था ।

तीसरे खंड के अन्दर रेडियो तथा तापमान, वायु की सघनता, सूर्य का परावेंगनी प्रकाश और ब्रह्माण्ड किरणों को मापने वाले यंत्र थे ।

किन्तु आश्चर्य की सबसे बड़ी बात यह थी कि इसमें एक जीवित कुत्ता भी यात्री था। यह एक छोटा-सा लाइका जाति का एस्किमो कुत्ता था।

यह कुत्ता एक बन्द कक्ष में था जिसमें वातानुकूलन-उपकरण और कुत्ते के लिए भोजन रखा गया था। कुत्ते की सांस, नाड़ी की गति और रक्तचाप दर्ज करने के लिए यंत्र रखे गए थे। इन यंत्रों को स्पुतनिक के रेडियो से सम्बद्ध कर दिया गया था ताकि कुत्ते की हालत के विषय में जानकारी पृथ्वी को भेजी जा सके।

अमरीका और योरोप के अनेक लोग इस ख्याल से विचलित हो उठे कि बाह्याकाश की ठंड में एक कुत्ता चक्कर लगा रहा है जिसकी अन्ततः मृत्यु निश्चित है। लेकिन अधिकतर लोगों ने अनुभव किया कि मनुष्य की अन्तरिक्ष-यात्रा के लिए आवश्यक जानकारी ऐसे ही परीक्षणों से प्राप्त की जा सकती है।

अन्ततः, यह कुत्ता, उन अनेक कुत्तों की तरह, जिन्होंने गत अनेक वर्षों में चिकित्सा अनुसंधान की प्रगति में सहायता दी, मानव प्रगति के लिए शहीद की मौत मर गया।

स्पुतनिक-दो का परिक्रमा-पथ अण्डाकार था। पृथ्वी से इसकी कम से कम दूरी केवल सौ मील और सबसे अधिक 1050 मील थी। यह पृथ्वी का एक चक्कर 103.7 मिनट में लगा रहा था।

[illegible] स्पुतनिक छोड़े जाने के बाद अनेक लोगों ने जो [illegible] कि इन यानों को उपग्रह के [illegible] नहीं है। [illegible] जो प्रश्न पूछा गया वह [illegible] ?

[illegible] कि स्पुतनिक [illegible]

हैं कि उन्हें रोकने वाला कोई नहीं है।

यह गलत धारणा भी लोगों में थी कि स्पुतनिक पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से बाहर है। यह बिलकुल गलत है।

पृथ्वी का गुरुत्व-बल ही स्पुतनिकों को उनकी कक्षा में टिकाए रखता है, जिस प्रकार वह चन्द्रमा को उसकी कक्षा में टिकाए हुए है। इस बात को समझने के लिए, न्यूटन के गति के तीन सिद्धान्तों पर नजर डालनी होगी। तुम्हें याद होगा कि न्यूटन का 'गति का तीसरा सिद्धान्त' बताता है कि राकेट कैसे ऊपर जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, हर क्रिया की उतनी ही विरोधी प्रतिक्रिया होती है।

यदि स्पुतनिक की अपनी गति नहीं होती तो, पृथ्वी का गुरुत्व बल उसे नीचे खींच लेता।

इन दो बातों का संयोजन स्पुतनिक को उसकी कक्षा में टिकाए रखता है। साथ ही जब स्पुतनिक आगे बढ़ता है, तो वह पृथ्वी की ओर गिरता है। 18,000 मील प्रतिघंटे की गति पर, स्पुतनिक की गति और गुरुत्व का खिंचाव एक-दूसरे को संतुलित कर देते हैं।

उक्त संयोजन इस कार्य के लिए पर्याप्त है कि स्पुतनिक पृथ्वी का चक्कर काटता रहे, जैसा कि नीचे के चार्ट में दर्शाया गया है
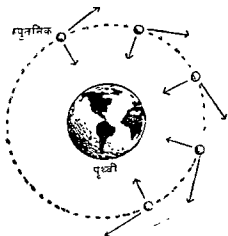
इसलिए यह कहना बिलकुल ठीक है कि उपग्रह निरन्तर पृथ्वी की ओर गिर रहा है।

यही बात चन्द्रमा के विषय में भी सत्य है। वह लाखों वर्ष से पृथ्वी की ओर गिर रहा है। लेकिन वह पृथ्वी पर नहीं पहुंचता।

स्पुतनिक भी अगर आकाश में काफी ऊंचाई तक पहुंच जाए
। सदा चक्कर लगाते रहेंगे। उनकी शक्ति का ह्रास इसलिए हो
ाता है कि उनके परिक्रमा-मार्ग की सबसे कम दूरी पृथ्वी से
तनी नजदीक होती है जहां उन्हें वायु के प्रतिरोध का सामना
रना पड़ता है। परिणामतः वे और भी नीचे आते जाते हैं और
न्ततः वायुमंडल के सघन भाग के घर्षण से जल जाते हैं।

9

मून मैसेंजर

पृथ्वी का चक्कर लगाने के लिए अब तक अनेक मनुष्य-सहित उपग्रह भेजे जा चुके हैं। हमारा अगला लक्ष्य है चन्द्रमा। चन्द्रमा में मनुष्य-सहित राकेट सर्वप्रथम कौन देश भेजता है, इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय होड़ लगी है। हो सकता है कि अगले कुछ वर्षों में ही वैज्ञानिकों को चन्द्रमा में मनुष्य-सहित राकेट भेजने में सफलता मिल जाए।

रूस तो चन्द्रमा पर एक मनुष्य-विहीन स्वचालित अंतरिक्ष स्टेशन स्थापित करने में सफल भी हो चुका है।

चन्द्रमा पर पहुंचने के लिए उन राकेटों से, जिनसे उपग्रह छोड़े गए हैं, अधिक बड़े राकेटों की जरूरत पड़ेगी। किन्तु अब हम यह जानते हैं कि ऐसे राकेटों का निर्माण कैसे किया जाए। वे अन्तर-महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों से, जिनका निर्माण अमरीका व रूस दोनों के ही सैनिक संस्थान कर रहे हैं, अधिक भिन्न नहीं होंगे।

काफी समय से वैज्ञानिक चन्द्रमा पर राकेट भेजने का स्वप्न देख रहे हैं। महान अमरीकी राकेट विशेषज्ञ प्रोफेसर रावर्ट एच० गोडार्ड ने 1919 में सर्वप्रथम ऐसी संभावना व्यक्त की थी।

गोडार्ड ने प्रस्ताव किया कि ऐसे राकेट में मैग्नीशियम पाउडर [illegible], जिसका राकेट के चन्द्रमा से टकराने पर तेज शुभ्र

रा के साथ विस्फोटन होगा। उनका ख्याल था कि खगोल-त्री अपने बड़े दूरबीनों की सहायता से इस चमक को देख सकेंगे। द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले के कुछ वर्षों में इस प्रस्ताव पर काफी ार हुआ और राकेट-उत्साहियों ने चन्द्रमा पर पहुंचने वाले प्रथम ट को एक नया नाम दिया। वे इसे 'मून मैसेंजर' कहने लगे।

अब यह सुझाव दिया गया है कि मून मैसेंजर अपने साथ ड्रोजन बम ले जाए। जब वह चन्द्रमा से टकराएगा तो कहीं दा प्रकाश होगा और निश्चय ही बड़े दूरबीनों से उसे देखने में कठिनाई नहीं होगी। किन्तु कुछेक लोग यह पसन्द नहीं करते चन्द्रमा पर हाइड्रोजन बम का विस्फोट किया जाए।

अनेक वैज्ञानिकों को यह विश्वास है कि यदि वैज्ञानिक यंत्रों सज्जित राकेट चन्द्रमा से टकराने की अपेक्षा उसकी परिक्रमा के लिए भेजा जाए तो चन्द्रमा के विषय में कहीं अधिक कारी मिल सकती है। अमरीका में जिन वैज्ञानिकों ने इस या का अध्ययन किया है उनमें डा० जार्ज गैमो और डा० ट ए० एरिके भी हैं।

डा० गैमो, जो बहुत विनोदप्रिय हैं, ने प्रस्ताव किया है कि प्रकार के राकेट को 'मून मैसेंजर' कहने की अपेक्षा, उस प्रसिद्ध के सम्मान में जो चांद पर कूदी थी, 'गाय' कहा जाए।

चन्द्रमा पर पहुंचने के लिए तीन या चार खंडीय राकेट का प्रयोग ा जा सकता है। यह सत्य है कि इनमें से केवल अंतिम खंड ही पर पहुंचेगा, शेष खंड रास्ते में ही गिर जाएंगे।

उपग्रह छोड़ने वाले राकेटों की अपेक्षा चन्द्रमा पर भेजे जाने राकेट को इसलिए बड़ा होना चाहिए कि अंतिम खंड को
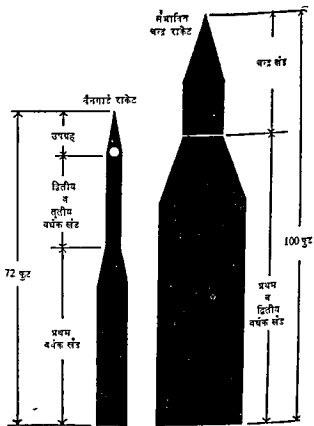
[illegible] पर जाने वाले राकेट का आकार वैनगार्ड से बड़ा होना जरूरी है।

धिक गति देना जरूरी है ।

उपग्रह को अन्तरिक्ष में पृथ्वी की सतह से तीन सौ मील ऊंचाई र पहुंचने के लिए 18,000 मील प्रति घंटे की गति आवश्यक है। दि उपग्रह छोड़ने में कोई त्रुटि नहीं हुई तो उसका परिक्रमा-पथ लकुल गोल होगा । लेकिन यदि राकेट के अन्तिम खंड की गति 8,000 मील प्रति घंटे से अधिक हुई तो परिक्रमा-पथ अंडाकार गा। यदि कक्षा में प्रवेश करने के समय तीसरा खंड पृथ्वी से तीन ौ मील ऊंचाई पर होगा, तो यह ऊंचाई उसके परिक्रमा-पथ की सबसे म ऊंचाई होगी ।

इसके ठीक विपरीत वह बिन्दु होगा जो पृथ्वी से सर्वाधिक दूर ोगा । इस बिन्दु को 'एपोजी' कहते हैं ।

जैसे-जैसे हमारे राकेट की गति बढ़ती जाएगी, 'एपोजी' पृथ्वी दूर होता जाएगा। इस तरह अनेक अंडाकार परिक्रमा-पथ बन ाएंगे, जैसा कि नीचे दिखाया गया है ।

यदि हम अपने राकेट की गति को बढ़ाते गए तो अन्ततः हम एक ऐसे बिन्दु पर पहुंचेंगे जहां कि परिक्रमा-पथ जरा भी अंडाकार नहीं रह जाएगा। 25,000 मील प्रति घन्टे की रफ्तार से, हमारा राकेट पलायन-गति पर पहुंच जाता है और सौर-परिवार में सूर्य

हो जाता है।

पृथ्वी से चन्द्रमा की औसत दूरी लगभग 240,000 मील है।

चन्द्रमा की परिक्रमा के लिए हम जो राकेट भेजेंगे उसकी गति हमें पलायन-गति से कम रखनी होगी। यदि राकेट ने 23,900 मील प्रति घन्टे की गति से उड़ना शुरू किया तो उसके परिक्रमा-पथ का सर्वाधिक दूर बिन्दु पृथ्वी से 280,000 मील होगा। यदि समय का ठीक हिसाब लगाकर राकेट छोड़ा गया तो वह चन्द्रमा का चक्कर लगाकर वापस पृथ्वी पर लौट आएगा।

शायद आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि राकेट निरंतर एक गति से नहीं उड़ेगा। जब राकेट चन्द्रमा की ओर बढ़ेगा तो वह पृथ्वी के गुरुत्वीय खिंचाव के विरुद्ध ऊपर उठेगा। इससे उसकी गति धीमी पड़ जाएगी। जितनी दूर वह पृथ्वी से होता जाएगा, उतनी ही धीमी उसकी गति भी होती जाएगी। जब वह चन्द्रमा के चक्कर काटने लगेगा तो उसकी गति प्रति घंटा कुछ सौ मील ही रह जाएगी।

उसके बाद, जब राकेट पृथ्वी को लौटने लगेगा तो उसकी गति बढ़ जाएगी, क्योंकि पृथ्वी का गुरुत्वीय खिंचाव उसे वापस पृथ्वी पर खींचेगा। जब पृथ्वी से उसकी दूरी न्यूनतम बिन्दु पर पहुंचेगी तो वह पुनः 23,900 मील प्रति घंटे की गति से उड़ने लगेगा।

पूरी यात्रा के लिए 'मून मैसेंजर' को 157 घंटे या साढ़े छः दिन लगेंगे और इसमें से 50 घंटे वह चन्द्रमा का चक्कर लगाने में व्यतीत करेगा।

जब 'मून मैसेंजर' चन्द्रमा के चक्कर काटना शुरू करेगा तो . . . के गुरुत्वीय खिंचाव से उसका परिक्रमा-पथ वक्र हो जाएगा।

राकेट छोड़ने का सही समय निर्धारित करते वक्त वैज्ञानिकों को इसके लिए व्यवस्था करनी होगी। यदि 'मैसेंजर' चन्द्रमा के काफी नजदीक पहुंच गया, तो उसका परिक्रमा-पथ इतना वक्राकार हो जाएगा कि वह पृथ्वी पर नहीं लौट सकेगा और उड़ता हुआ अन्तरिक्ष में चला जाएगा।

इस तथ्य से कि 'मैसेंजर' चन्द्रमा के आसपास 50 घंटे तक रहेगा, वैज्ञानिकों को बड़ी प्रसन्नता होती है। यदि 'मैसेंजर' टेलीविजन कैमरे और ब्राडकास्टिंग उपकरणों से सुसज्जित रहा, तो हमें चन्द्रमा का ऐसा दृश्य देखने को मिल सकेगा जैसा कि पहले हमने कभी नहीं देखा था।

इसके अतिरिक्त वह हमें पहली बार चन्द्रमा के पार्श्व भाग का दर्शन कराएगा, जो कि बहुत महत्त्वपूर्ण है। चूंकि चन्द्रमा का सामने का भाग ही सदा पृथ्वी की ओर रहता है, इसलिए चन्द्रमा के पार्श्व भाग को कभी किसीने नहीं देखा।

वैज्ञानिक चाहते हैं कि ऐसा 'मून मैसेंजर' भेजा जाए जो वापस पृथ्वी की सतह पर लौट आए। यदि 'मैसेंजर' लौटते वक्त, पृथ्वी से अपनी न्यूनतम दूरी के समय, पृथ्वी की सतह के समानान्तर उड़ रहा होगा तो वह पुनः चांद की यात्रा पर रवाना हो जाएगा।

इस स्थिति को न आने देने के लिए 'मैसेंजर' में सहायक जेट होने चाहिएं जो उसकी गति को धीमा कर देंगे और उसे पृथ्वी के वायुमण्डल में ले आएंगे। अब खतरा यह होगा कि 'मैसेंजर' उल्का की तरह जल न जाए। लेकिन 'मैसेंजर' को पृथ्वी की सतह पर लाने के लिए अन्ततः कोई तरकीब निकालनी होगी।

इस प्रकार का 'मैसेंजर' अपने साथ मूवी कैमरा और टेली-

विज्ञान उपकरण ले जा सकेगा और हमें चन्द्रमा की सतह का स्थायी विवरण दे सकेगा।

चन्द्रमा से कुछ नमूने पृथ्वी पर लाने की एक योजना सुझाई गई है। यह 'मून मैसेंजरों' के एक जोड़े की सहायता से किया जाएगा।

इनमें से एक 'मैसेंजर' चन्द्रमा की सतह पर एक छोटा परमाणु बम गिराएगा। दूसरा विस्फोट से अन्तरिक्ष में उड़ी धूल व चट्टानों के नमूने एकत्रित करेगा।

इस प्रकार के नमूने चन्द्रमा की प्रकृति एवं उद्भव-विषयक अनेक समस्याओं को हल करने में खगोलशास्त्रियों के लिए सहायक होंगे। निस्सन्देह, 'मून मैसेंजरों' से यह कार्य सम्पादन कराने के लिए आश्चर्यजनक परिशुद्धता के इलैक्ट्रानिक नियंत्रणों की आवश्यकता होगी।

अन्तरिक्ष-चिकित्सा

अंतरिक्ष-युग के आरम्भ के साथ ही चिकित्सा-विज्ञान की एक नई शाखा अस्तित्व में आई है। इस शाखा का नाम है अंतरिक्ष-चिकित्सा। अमरीकी वायुसेना में अंतरिक्ष-चिकित्सा का एक विभाग है।

गवेषकों के चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों पर जाने से पूर्व, इस विभाग के चिकित्सा-विशेषज्ञों को अनेक समस्याएं हल करनी होंगी।

हमें इस विषय में बिलकुल आश्वस्त होना होगा कि मनुष्य अंतरिक्ष में सुरक्षित रह सकेंगे, कि वे पृथ्वी की सतह से सकुशल उड़ सकेंगे और सकुशल पृथ्वी पर लौट सकेंगे।[1]

कुछ वर्ष पूर्व, अमरीका ने अंतरिक्ष-चिकित्सा की समस्याओं का दो तरह से पता लगाना शुरू किया। एक तो प्रयोगशाला में स्वयंसेवकों पर परीक्षण करके और दूसरा राकेटों में पशुओं को भेजकर।

1953 में ह्वाइट सेंड्ज प्रूविंग ग्राउंड से अमरीकी वैज्ञानिकों ने एरोबी राकेट में दो चूहे भेजे। ये चूहे विशेष रूप से निर्मि

1. इस ओर अमरीका ऐसे उपग्रह अन्तरिक्ष में भेज चुके हैं जिनमें मनु
थे और जो पृथ्वी के कई चक्कर काटने के बाद, सकुशल लौट आए हैं।

कैपस्यूल में भेजे गए थे ।

राकेट 36 मील की ऊंचाई तक पहुंचा, जहां पहुंचने पर कैपस्यूल राकेट से अलग हो गया और पैराशूट के सहारे पृथ्वी पर लौट आया । उड़ान भरते समय, इन पशुओं पर ढाई सेकंड तक गुरुत्व-बल से 14 गुणा अधिक बल डाला गया लेकिन इसका उन पर कोई बुरा असर नहीं पड़ा ।

उड़ान के दौरान इन चूहों की एक फिल्म तैयार की गई। फिल्म से पता चला कि गुरुत्वाकर्षण के शून्य पर पहुंचते ही चूहे उलझन में पड़ गए और वे भारविहीन हो गए ।

जो दो बन्दर ऊपर भेजे गए थे, उनके साथ ऐसे यंत्र थे जिन्होंने बन्दरों के दिल की धड़कन, रक्तचाप और सांस दर्ज की थी। कैपस्यूल से बन्दरों को मुक्त करने के तुरन्त बाद, एक बन्दर ने बड़े स्वाद के साथ एक केला खाया ।

रूसी वैज्ञानिकों ने राकेटों से अनेक कुत्ते भेजे, इनमें से कुछेक 60 मील की ऊंचाई तक पहुंचे । इन वैज्ञानिकों ने बताया कि कुत्तों ने आराम से यात्रा की और उनपर कोई बुरा असर नहीं पड़ा। एक कुत्ता, जिसे अन्तरिक्ष-पोशाक पहनाई गई थी 56 मील की ऊंचाई पर राकेट ने बाहर फेंक दिया और वह पैराशूट के सहारे वापस पृथ्वी पर लौट आया ।

स्पुतनिक-दो में ऊपर जाते समय तो कुत्ता जीवित रहा लेकिन जब उपग्रह पृथ्वी के चक्कर काटने लगा तो मर गया ।

राकेट तथा अन्तरिक्ष यानों में जिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा, उन्हें पृथ्वी पर ही पैदा करके, अनेक स्वयंसेवकों पर परीक्षण किए गए हैं ।

राकेट यान में यात्रियों को, राकेट के उड़ते समय एक भारी झटके का सामना करना पड़ेगा। यही बात काफी कम मात्रा में मोटरगाड़ी में भी होती है। यदि ड्राइवर गाड़ी को एकदम झटके से चलाता है तो यात्री पीछे की ओर गिरते हैं।

इस प्रकार जिस बल (फोर्स) का अनुभव किया जाता है, उसे इस प्रकार मापा जाता है कि वह गुरुत्व-बल से कितना तेज है। इस बल को 2जी, 3जी आदि कहते हैं।

द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान, इस बात का पता चला कि विमान-चालक, एकदम तेज ढाल या अचानक मोड़ लेते समय, 4जी सह सकते हैं। 6जी पर वे स्याह पड़ जाते हैं। पहले सोचा गया कि राकेटों पर भी यही नियम लागू होगा। परन्तु परीक्षणों से पता चला कि चालक अपनी बैठने की स्थिति के कारण स्याह पड़ते हैं। इस स्थिति के परिणामस्वरूप उनके मस्तिष्क से रक्त की निकासी होती है और वे बेहोश हो जाते हैं।

अमरीका तथा अन्यत्र ऐसे परीक्षण किए गए हैं जिनमें स्वयं-सेवकों को एक भुज के सिरे पर रखकर एक विशाल वृत्त में घुमाया जाता है। इस युक्ति को अपकेन्द्रित्र कहते हैं। स्वयंसेवक पर अपकेन्द्री-बल डाला जाता है जो चक्कर की गति तेज होने के साथ बढ़ता जाता है।

3जी पर, स्वयंसेवकों ने असुविधा होने तथा अन्य कई प्रकार की शिकायतें कीं। किन्तु आश्चर्य की बात है कि 4जी पर शिकायतें कम हो गईं और यह निष्कर्ष निकाला गया कि स्वयंसेवक 10जी तक सहन कर सकते हैं। रैण्डल्फ वायुसेना केन्द्र का एक अप-वादात्मक व्यक्ति 17जी तक सहन कर सका।

बल बढ़ने के साथ ही उसे सहन करने की क्षमता घटती जाती है। 7जी को व्यक्ति 10 मिनट तक सह सकते हैं, जबकि 10जी को केवल दो मिनट के लिए।

चिकित्सा-वैज्ञानिकों का विचार है कि राकेट-यान के उड़ते समय जिस बल का सामना करना होगा, उसे यात्री सहन कर लेंगे। चूंकि लेटे रहने से यह बल अधिक आसानी से सहन किया जा सकता है, इसलिए उड़ान भरते समय सीटों को इस तरह झुका दिया जाएगा कि उनपर लेटा जा सके।

चित लेटे हुए यात्री को ऐसा महसूस होगा कि वह सीसे का बना हुआ है। 3जी पर उसे अपनी बाहु, पैर या सिर ऊपर उठाना कठिन प्रतीत होगा। 8जी पर, उसे सांस लेने में कठिनाई होगी। किन्तु यात्री को यह सब कुछ तभी सहन करना पड़ेगा जबकि राकेट गति पकड़ रहा होगा।

जब राकेट के मोटर बन्द हो जाते हैं तो यात्री को बिलकुल विपरीत परिस्थिति—भारविहीनता—का सामना करना होगा। उड़ान के समय प्राप्त संवेग से जब एक बार राकेट उड़ने लगेगा तो यात्री को शून्य गुरुत्वाकर्पण का अनुभव होगा।

मूलतः, इसे 'स्वतंत्र अवपात' (फ्री फाल) कहते थे, क्योंकि यह उन परिस्थितियों से मिलता था जिनका ऊंचाई से गिरने पर सामना करना पड़ता है।

सामान्यतः हमें अपने भार का पता रहता है, क्योंकि हमारे नीचे की भूमि हमें सम्भाले हुए है और हमसे पृथ्वी के गुरुत्वीय क्षेत्र के खिचाव का प्रतिरोध कराती है। स्वतन्त्र अवपात में उदाहरणतः [illegible] से कूदने पर, व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से नीचे गिर रहा होता

र गुरुत्वीय-बल के कारण उसकी गिरने की गति तेज़ होती है। परिणामतः उसे भारविहीनता की अनुभूति होने लगती है। यह अनुभूति राकेट में भी अनुभव होगी, चाहे वह पृथ्वी की से ऊपर उठ रहा हो या पृथ्वी की ओर आ रहा हो। इसका ण यह है कि दोनों ही मामलों में राकेट पर गुरुत्वाकर्षण प्रतिक्रिया हो रही है।

भारहीनता की स्थिति एक तथ्य है, मात्र अनुभूति नहीं। यात्री ट के अन्दर अपने कक्ष में अपने आपको हवा में तैरता पाएगा, छत पर भी उतनी ही आसानी से चल सकेगा जितनी आसानी र्श पर।

यदि वह किसी वस्तु को हाथ से छोड़ देगा तो वह उसके कक्ष र्श पर न गिरकर हवा में तैरती रहेगी। किसी बोतल से गिलास कोई तरल पदार्थ उडेलना असम्भव होगा।

एक बड़ा प्रश्न यह है कि भारविहीनता की इस स्थिति के प्रति ष्य की कैसी प्रतिक्रिया होगी।

एक वायुयान की सहायता से साधारण तौर पर भारविहीनता ा की जा सकती है, और इस तरह चिकित्सा-विशेषज्ञ इसके बारे कुछ जानकारी प्राप्त कर रहे हैं। अब तक की जानकारी उलझन- री रही है। कुछ विमान-चालकों को इसकी अनुभूति सुखद लगती । कुछ इसकी कोई चिंता ही नहीं करते। लेकिन थोड़े से ऐसे ो हैं जिन्हें यह स्थिति निश्चय ही असुविधाजनक प्रतीत होती है।

जेट वायुयान में शून्य गुरुत्वाकर्षण की स्थिति पैदा करने की रकीब टैक्सास के रैंडाल्फ फील्ड-स्थित अमरीकी वायुसेना अन्त- रक्ष चिकित्सा विभाग के फिट्ज़ और हेन्ज हावर ने निकाली थी।

विमान-चालक अपने विमान को सीधा गोता खिलाता है, फि अधिकतम गति पर उसे ऊपर ले जाता है और इंजन बन्द कर दे है। इस दौरान विमान-चालक भारविहीनता अनुभव करता है तत्पश्चात् वह पुनः इंजन चालू कर देता है।

इस तरह से, 30 से 45 सेकंड तक भारविहीनता अनुभव करना सम्भव हो सका है।

प्रथम चालक, जिसने ऐसा यत्न किया, ने बताया कि मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे कि मैं एक विशाल गोले में बैठा हूं और वह एक साथ ही विभिन्न दिशाओं में चक्कर काट रहा है। उसने यह भी देखा कि यंत्र-पैनल मे रखी पेंसिल ऊपर उठी और हवा में तैरने लगी।

रैंडाल्फ फील्ड में 22 विमान-चालकों ने इस अनुभव का आनन्द लिया और सभी को वह सुखद लगा। उन्हें गति की कोई अनुभूति नही हुई परन्तु ऐसा अनुभव हुआ जैसे वे तैर रहे हों या गिर रहे हों।

11 अन्य चालकों को गिरने, टकराने, लुढ़कने, सिर पर खड़ा होने अथवा हवा में झूलने आदि की अनुभूतियां हुईं। लेकिन उन्हें इन अनुभूतियों से कोई कष्ट नही हुआ। अन्य 14 चालकों को तीव्र गति के कारण होनेवाली बीमारी हुई और मतली आने लगी।

इन परीक्षणों से प्रतीत होता है कि कुछेक लोगों के लिए तो राकेट-यानों में यात्रा करना सम्भव होगा जबकि कुछेक अन्य लोग उसमें सफर नही कर सकेंगे।

डाक्टर और इंजीनियर अन्तरिक्ष यान के केबिन के डिज़ाइन तैयार करने की समस्या का भी अध्ययन कर रहे हैं। रैंडाल्फ फील्ड (४) अन्यत्र केबिनों के माडल तैयार किए गए हैं और अमरीकी

वायुसेना के स्वयंसेवक यह जानने के लिए उनका उपयोग कर रहे हैं कि उनमें रह सकना कहां तक सम्भव है।

ऐसे कैबिनों के लिए वातानुकूलित एवं दाबानुकूलित होना जरूरी है। सास लेने के लिए उसमें आक्सीजन की व्यवस्था आवश्यक है और हवा से कार्बन डाइआक्साइड को हटाने के लिए कुछ रासायनिक साधनों का प्रयोग भी करना होगा।

इस बात पर सभी सहमत है कि अंतरिक्ष यान के कैबिन में तापमान पर नियन्त्रण रखना कठिन होगा। ऊपर उठते समय, जब राकेट पृथ्वी के वायुमण्डल के निचले भाग से होकर उड़ रहा होगा तो सम्भव है हवा का घर्षण कैबिन को अत्यधिक गर्म कर दे।

किन्तु, परीक्षणों से पता चलता है कि मनुष्य 70 मिनट तक 158 डिग्री फारेनहाइट तापमान सह सकता है और उसे कोई नुकसान नहीं होता। इससे अधिक तापमान भी सहा जा सकता है, लेकिन कम समय तक।

सूर्य की किरणों से सम्भव है राकेट का अन्दरूनी भाग अत्यन्त गर्म हो जाए। सूर्य के अधिक प्रकाश से बचाव के लिए किसी न किसी प्रकार के परिरक्षकों या पटों की जरूरत पड़ेगी।

एक और समस्या, जिसका अभी तक समाधान नहीं हुआ, ब्रह्मांड-किरणों का प्रभाव भी है। ये किरणें इतनी शक्तिशाली हैं कि वे अन्तरिक्ष यान के खोल को छेदकर अन्दर पहुंच जाएंगी। राकेटों तथा उपग्रहों में पशुओं को भेजकर इस बात के और परीक्षण करने होंगे कि यात्रियों के लिए ये किरणें कितनी खतरनाक हैं।

11

यात्रीवाहक राकेट

राकेट-विशेषज्ञों का ख्याल है कि चन्द्रमा पर पहुंचने के लिए तिहरे कार्यक्रम की जरूरत पड़ेगी। पहले चरण में ऐसा राकेट बनाना होगा जो मनुष्यों और रसद को 500 से 1000 मील तक की ऊंचाई तक ले जा सके।

ऐसे राकेट की सहायता से अंतरिक्ष-स्टेशन स्थापित किया जा सकेगा। यह वैनगार्ड उपग्रह या स्पुतनिक का ही विशाल रूप होगा, जिसमें मनुष्य लगातार महीनों तक आराम से रह सकेगा। अंतरिक्ष में स्टेशन बनाना कार्यक्रम का दूसरा चरण होगा।

तीसरा चरण अन्तरिक्ष-स्टेशन में चन्द्र-यान का निर्माण और चन्द्रमा के लिए उसकी उड़ान होगा।

आप सोचेंगे कि पृथ्वी की सतह पर ही अन्तरिक्ष यान का निर्माण और यहां से सीधे चन्द्रमा के लिए उड़ान आसान क्यों नहीं है। लगता तो यह काफी आसान है और शायद कभी ऐसा ही किया जाए।

लेकिन जो राकेट मोटर और ईंधन अब उपलब्ध हैं उनसे अभी ऐसा कर सकना संभव नहीं है। गणना से पता चलता है यदि वर्तमान ईंधनों में कुछ सुधार करने पर भी एक-खंडीय

राकेट अधिक से अधिक 18,000 मील प्रति घंटे की गति प्राप्त कर सकता है।

चन्द्रमा में पहुंचने के लिए यह गति काफी नहीं है। यह तो केवल उपग्रह की तरह, राकेट को भूकक्षा में स्थापित करने के लिए पर्याप्त है। लेकिन वैज्ञानिकों की राय है कि ऐसा करना ईंधन को बरबाद करना होगा। तीन-खंडीय राकेट अधिक दक्ष होता है, क्योंकि वह प्रथम तथा द्वितीय खंड को, उनके द्वारा अपना ईंधन समाप्त कर लेने के बाद, गिरा देता है और इस प्रकार उनके अनावश्यक भार से मुक्ति पा लेता है।

आप शायद यह भी पूछे कि यह संभव क्यों नहीं है कि तीन-खंडीय राकेट सीधे पृथ्वी से ही उड़े। संभवतः ऐसा राकेट मनुष्य-विहीन 'मून मैसेंजर' को चांद में भेजने के लिए प्रयुक्त किया जाएगा।

किन्तु इस कार्य के लिए यह तरीका अच्छा नहीं है और इससे बरबादी भी होगी एवं अत्यधिक ईंधन की आवश्यकता पड़ेगी। वैज्ञानिक इस बात पर भी सहमत है कि वायुमंडल के निचले सघन क्षेत्र से होकर ऊपर जाने के लिए जिस प्रकार के राकेट की जरूरत होगी, वह अच्छा अन्तरिक्ष यान नहीं बन सकता। इसलिए अन्तरिक्ष-स्टेशन में कहीं अधिक अच्छा यान बनाना संभव होगा।

किन्तु फिर भी, अन्तरिक्ष-स्टेशन का निर्माण करने हेतु, मनुष्यों तथा रसद को कक्षा में पहुंचाने के लिए विशालकाय राकेटों की जरूरत पड़ेगी। वर्तमान अनुमान के अनुसार, भूकक्षा में एक पौंड सामग्री पहुंचाने के लिए आधा टन भार के राकेट की जरूरत होती है।

कुछ वर्ष पूर्व, डा० वर्नहर वान ब्रौन ने 24 मंजिली इमारत के बराबर ऊंचे तीन-खंडीय राकेट की योजना का प्रस्ताव रखा था। इस प्रकार के राकेट का भार नौसेना के हलके क्रूजर के बराबर अर्थात् 7,000 टन होगा। इसमें से अधिकांश भार ईंधन का होगा।

उडान भरने के डेढ़ मिनट के अन्दर प्रथम खंड के जेट मोटर 5 000 टन ईंधन समाप्त कर चुकेंगे।

प्रथम और द्वितीय खंड, दोनो ही अपना ईंधन खत्म कर लेने के बाद अलग हो जाएगे और समुद्र में गिर जाएंगे। उनकी विशाल पैराशूट और सहायक जेट, जो ब्रेक का काम करेंगे, धं कर देंगे।

तीसरे खंड में कर्मचारियों और यात्रियों के लिए कैबिन है और वह अन्तरिक्ष यान के निर्माण के लिए 36 टन सामग्री जाएगा।

चालक इस खंड को एक हजार मील की ऊंचाई पर भू में स्थापित करेगा। उसमें ईंधन का रिजर्व भडार भी होगा ता चालक उसे वापस पृथ्वी पर भी ला सके।

वान ब्रौन ने ऐसे तीसरे खंड की कल्पना की थी जिसमें विमा की तरह पंख लगे हों ताकि वह वायुमंडल मे पुन प्रवेश करने प धीरे-धीरे पृथ्वी पर लौट आए।

गुडइयर एयरक्राफ्ट कारपोरेशन के तीन विशेषज्ञों, डारे सी० रोमिक, रिचर्ड ई० नाइट तथा जे० एम० वान ऐल्ट ने भं यात्रीवाहक तीन-खंडीय राकेट की योजना बनाई थी। उन्हों अपने प्रस्तावित राकेट का नाम 'मीटियार' (उल्का) रखा।

हाल में, रोमिक, नाइट और सैमुअल ब्लैक ने 'मीटियार' के

एक लघु स्वरूप का डिज़ाइन तैयार किया, जिसका नाम उन्होंने 'मीटिग्रार जूनियर' रखा। उनका ख्याल था कि इसे 1962 तक तैयार किया जा सकेगा।

'मीटिग्रार जूनियर' के हर खंड में विमान की तरह पंख होंगे ग्रौर उसमें कर्मीदल भी होगा जो उसे वापस पृथ्वी पर लाएगा।

प्रथम खंड का भार 500 टन होगा ग्रौर उसमें 17 राकेट-मोटर लगे होंगे। इनमें से कुछेक जिम्बलों में होंगे। उसके उड़ान-पथ पर नियंत्रण रखने के लिए पंखों के सिरों ग्रौर पिछले हिस्से के पंखों में सहायक जेट लगे रहेंगे।

प्रथम खंड के लिए कैबिन में एक चालक, एक सह-चालक ग्रौर एक उड़ान इंजीनियर रहेगा। द्वितीय खंड से ग्रलग होने के बाद, प्रथम खंड वापस पृथ्वी पर लौट ग्राएगा। प्रथम खंड को उसके सही रूप में नीचे लाने के लिए, विशेष दरवाज़े उसके ग्रग्रभाग को बन्द कर देंगे। जब वह वायुमंडल के निचले भाग में पहुंचेगा तो चालक उसे इस तरह धीरे से ग्लाइड कराएगा कि वह नीचे पृथ्वी पर ग्रा जाएगा।

द्वितीय खंड का भार 70 टन होगा ग्रौर उसमें 6 राकेट मोटर होंगे। ग्रधिकांश मामलों में यह प्रथम खंड का संक्षिप्त रूप होगा। उसे वापस पृथ्वी पर लाने के लिए एक चालक ग्रौर एक सह चालक होगा।

तीसरे खंड का वज़न 6 टन होगा ग्रौर इसमें चार राकेट मोटर होंगे, जो सब जिम्बलों में लगे होंगे। इसमें कर्मीदल के तीन सदस्यों ग्रौर चार यात्रियों के लिए एक कैबिन होगा। इसमें लगभग ग्राधा टन सामान के लिए भी एक कक्ष होगा।

प्रथम खंड 6 000 मील की, दूसरा खंड 15 000 की और तीसरा
ड 18,000 मील प्रति घंटे की गति से उड़ेगा। कार्यभारी चालक
00 मील की ऊंचाई पर तीसरे खंड को कक्षा में स्थापित करेगा।
के बाद उड़ान इंजीनियर राकेट मोटरों को बन्द कर देगा और
सरा खंड जब तक चाहो तब तक इस कक्षा में रहेगा।

तीसरा खंड हमेशा एक ही दिशा को संकेत करता है।
रिणामतः परिक्रमा करते समय, पथ के प्रथम आधे भाग में उसका
ग्रभाग पहले रहता है और शेष आधे पथ में पिछला भाग। पृथ्वी
र लौटने के लिए कार्यभारी चालक उस समय राकेट के मोटरों को
लू कर देगा जबकि राकेट का पिछला भाग पहले होगा।
टर अब ब्रेक का काम करेंगे और राकेट की गति धीमी कर देंगे

परिणामतः, परिक्रमा-पथ वृत्त से बदल कर अंडाकार हो जाएगा
र वह पृथ्वी की सतह से 64 मील के अन्दर आ जाएगा। इतनी
वाई पर राकेट की गति को और धीमा करने के लिए पर्याप्त
यु-प्रतिरोध होगा और वह चालक के नियंत्रण में धीरे-धीरे पृथ्वी
र लौट आएगा।

'मीटिग्रार जूनियर' जैसे तीन-खंडीय राकेट का संचालन करने
लिए चालक को काफी अनुभव होना चाहिए। परन्तु आवश्यक
न और कुशलता राकेट-यानों में प्राप्त किए जा रहे हैं। अमरीका
सशस्त्र सेना कुछ वर्षों से राकेट यानों में परीक्षण कर रही है।

ध्वनि की गति से तेज उड़नेवाला प्रथम विमान, बेल एक्स-1
केट यान ही था। 1956 में, कैप्टेन इवान किंचेलो बेल एक्स-2
मान को लगभग 24 मील ऊंचा ले गए और इस प्रकार उन्होंने
उड़ान का एक रिकार्ड स्थापित किया।

जैसे-जैसे चालक इन राकेट यानों को सकुशल पृथ्वी पर लौटा लाना सीखते जाएंगे, डिज़ाइनर ऐसे परिवहन राकेटों पर कार्य शुरू कर देंगे जो यात्रियों और सामान को एक शहर से दूसरे शहर ले जाएंगे। अनेक विशेषज्ञों का ख्याल है कि निकट भविष्य में एक घंटे से भी कम समय में न्यूयार्क से सैन फ्रांसिस्को जाना या अटलांटिक सागर को पार करना संभव हो सकेगा।

12

अन्तरिक्ष-स्टेशन

अन्तरिक्ष-स्टेशन, वायुमंडल से काफी ऊंचाई पर, अन्तरिक्ष स्थापित किया जाएगा। इसके लिए अधिकांश विशेषज्ञ 1,000 मी की ऊंचाई के पक्ष में हैं, परन्तु बहुत संभव है कि पहला अंतरि स्टेशन केवल 500 मील की ऊंचाई पर ही बनाया जाए। इत ऊंचाई पर स्टेशन बनाना आसान होगा और इसलिए उसका निम अपेक्षाकृत जल्दी किया जा सकेगा।

'मीटिआर जूनियर' जैसे विशाल तीन-खंडीय राकेट मनु और सामान को 500 मील तक की ऊंचाई तक ले जाएंगे।

इन परिवहन राकेटों द्वारा लाए गए सामान का अन्तरिक्ष ढेर लगाया जाएगा। इंजीनियर और टैक्नीशियन, जो उपयु अंतरिक्ष-पोशाक पहने होंगे, बड़े आराम से राकेट से निकल अंतरिक्ष में उतर जाएंगे।

आप ऐसी कल्पना करते हैं कि मनुष्य और सामान नीचे पृ की ओर गिर पड़ेंगे और वायुमंडल के निचले सघन क्षेत्र में उल्का की तरह जल जाएंगे?

ऐसा नहीं होगा। जब परिवहन राकेट का तीसरा खंड 5 मील की ऊंचाई तक पहुंचेगा तो चालक उसे उपग्रह की तरह च

में स्थापित कर देगा। चूंकि इतनी ऊंचाई पर जरा भी हवा नहीं होगी, इसलिए राकेट अभीष्ट समय तक कक्षा में टिका रहेगा।

यह तो अब जाहिर ही है कि राकेट के अन्दर रखी हर चीज भी उसी गति से चल रही है जिस गति से राकेट। अतः राकेट से कोई चीज बाहर फेंक दी गई तो भी वह इसी गति से उड़ती रहेगी।

यदि राकेट से इस्पात गर्डरों का ढेर बाहर निकाल दिया गया तो यह ढेर भी राकेट के साथ, उसी मार्ग पर पृथ्वी की परिक्रमा करेगा। राकेट से बाहर निकलनेवाले इंजीनियर, जो अन्तरिक्ष-पोशाक पहने हुए होगा, के साथ भी ऐसा ही होगा।

एक दिलचस्प बात यह है कि जो व्यक्ति राकेट से निकलकर अन्तरिक्ष में उतरेगा, उसे इस बात की अनुभूति नहीं होगी कि वह बहुत तेज गति से घूम रहा है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर $18\frac{1}{2}$ मील प्रति सेकंड की रफ्तार से घूम रही है, किन्तु आपको और मुझे ऐसा कोई आभास नहीं होता।

अन्तरिक्ष-स्टेशन की रूपरेखा के विषय में अनेक योजनाएं सामने आई हैं। यह सुझाव भी दिया गया है कि हल्के प्लास्टिक के सामान से अन्तरिक्ष-स्टेशन बनाया जाए जिसकी दीवारें नाइलोन की हों। चूंकि अन्तरिक्ष-स्टेशन शून्याकाश में होगा, इसलिए उसे वायुमंडल से बचाव की आवश्यकता नहीं होगी। परन्तु एक प्रश्न यह है कि इतने हलके सामान से निर्मित स्टेशन पर उल्काओं का क्या प्रभाव पड़ेगा।

अन्तरिक्ष-स्टेशन बनाने के लिए एक सर्वोत्तम योजना डा० वर्नहर वान ब्रौन ने पेश की है। उनका डिजाइन एक विशाल पहिये जैसा दिखाई देता है।

स्टेशन का मुख्य भाग पहिये का रिम है। हब के पास केन्द्रीय

संरचना होती है और वहां से रिम तक स्पोक होते हैं।

उन्होंने सुझाव दिया है कि अपने परिक्रमा-पथ पर बढ़ते हुए पहिया स्वयं भी गोलाकार घूमता रहे। तब गुरुत्वाकर्षण का स्थान अपकेन्द्री-बल ले लेगा और स्टेशन-स्थित वैज्ञानिकों और इंजीनियरों को भारविहीनता की अनुभूति नहीं होगी।

ऐसा स्टेशन 250 फुट व्यास तक का हो सकता है। मशीन-कक्ष तथा वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं के अतिरिक्त, वैज्ञा और इंजीनियरों के रहने के लिए कमरे भी होंगे।

अन्तरिक्ष-स्टेशन तीन उद्देश्यों की पूर्ति करेगा। एक तो 'यान-प्रांगण' होगा, जिसमें अन्तरिक्ष यान का निर्माण जाएगा। दूसरे यह अन्तरिक्ष यानों के लिए विराम-स्थल भी होगा। चन्द्रमा या मंगल से लौटते हुए, अन्तरिक्ष यान इस स्टेशन पर यात्रियों को उतारेंगे। उसके बाद, परिवहन राकेट इन यात्रियों को पृथ्वी पर लाएंगे।

स्टेशन का तीसरा उद्देश्य वैज्ञानिक अनुसंधान होगा। वह सूर्य, तारों, ब्रह्माण्ड किरणों और ब्रह्मांड की अन्य आश्चर्यजनक बातों का अध्ययन करने के लिए दूरबीन, गाइगर गणक तथा अन्य यंत्रों से सुसज्जित होगा।

इनमें से कुछेक यंत्र, नीचे बादलों और मौसम में परिवर्तन का भी अध्ययन करेंगे।

अन्तरिक्ष-स्टेशन के विषय में जितनी भी योजनाएं सामने आई हैं, उनमें डा० डारेल सी० रोमिक की योजना को अनेक विशेषज्ञ सर्वोत्तम समझते हैं। रोमिक अन्तरिक्ष-स्टेशन के निर्माण के लिए 'मीटिआर जूनियर' के तीसरे खंड का उपयोग करना चाहते हैं।

ब्रौन ने इस तरह पहिए की शक्ल का अंतरिक्ष-स्टेशन बनाने का सुझाव दिया है।

सम्भव होती है और यहां से फिर वह लौट आते हैं।

उन्होंने सुझाव दिया है कि अपने परिक्रमा-पथ पर बढ़ते हुए पहिया स्वयं भी गोलाकार घूमता रहे। तब गुरुत्वाकर्षण का स्थान अपकेन्द्री-बल ले लेगा और स्टेशन-स्थित वैज्ञानिकों और इंजीनियरों को भारविहीनता की अनुभूति नहीं होगी।

ऐसा स्टेशन 250 फुट व्यास तक का हो सकता है। इसमें मशीन-कक्ष तथा वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं के अतिरिक्त, वैज्ञानिकों और इंजीनियरों के रहने के लिए कमरे भी होंगे।

अन्तरिक्ष-स्टेशन तीन उद्देश्यों की पूर्ति करेगा। एक तो यह 'यान-प्रांगण' होगा, जिसमें अन्तरिक्ष यान का निर्माण किया जाएगा। दूसरे यह अन्तरिक्ष यानों के लिए विराम-स्थल भी होगा। चन्द्रमा या मंगल से लौटते हुए, अन्तरिक्ष यान इस स्टेशन पर यात्रियों को उतारेंगे। उसके बाद, परिवहन राकेट इन यात्रियों को पृथ्वी पर लाएंगे।

स्टेशन का तीसरा उद्देश्य वैज्ञानिक अनुसंधान होगा। वह सूर्य, तारों, ब्रह्माण्ड किरणों और ब्रह्मांड की अन्य आश्चर्यजनक बातों का अध्ययन करने के लिए दूरबीन, गाइगर गणक तथा अन्य यंत्रों से सुसज्जित होगा।

इनमें से कुछेक यंत्र, नीचे बादलों और मौसम में परिवर्तन का भी अध्ययन करेंगे।

अन्तरिक्ष-स्टेशन के विषय में जितनी भी योजनाएं सामने आई उनमें डा० डारेल सी० रोमिक की योजना को अनेक विशेषज्ञ [illegible] मानते हैं। रोमिक अन्तरिक्ष-स्टेशन के निर्माण के लिए '[illegible]र जूनियर' के तीसरे खंड का उपयोग करना चाहते हैं।
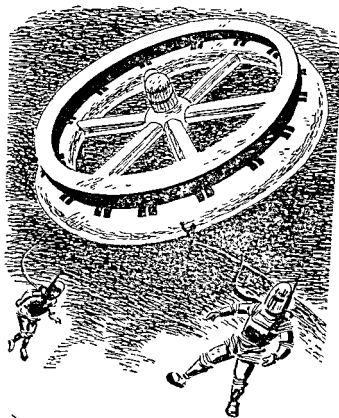
वाने ब्रौन ने इस तरह पहिए की शक्ल का अन्तरिक्ष-स्टेशन बनाने का सुझाव दिया है।

तृतीय खंड के दो भागों को इस प्रकार जोड़ा जाएगा कि 'मीटिग्रार जूनियर' अन्तरिक्ष यान का केन्द्रीय हीर बन सके। तत्पश्चात् पंखों और पिछले हिस्से के पंखों को हटा दिया जाता है और राकेट-मोटर निकाल लिए जाते हैं।

इसके परिणामस्वरूप एक लम्बा नलिकाकार ढांचा तैयार हो जाएगा जो 'मीटिग्रार जूनियर' अंतरिक्ष यान के हीर का रूप ले लेगा। वस्तुतः हीर के जोड़े जाने पर, उसे अन्तरिक्ष-स्टेशन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है, हालांकि वह छोटा होगा।

अन्य परिवहन राकेट और निर्माण-सामग्री लाएंगे और हीर के चारों ओर, एक बड़ा नलिकाकार स्टेशन बनाया जाएगा। डायग्राम से यह स्पष्ट हो जाता है।

अन्तत. स्टेशन के एक छोर पर विशाल पहिये के रूप में, जो गोलाकार घूमता रहेगा, रहने के लिए कमरे बनाए जाएंगे।

रहने के कमरों को गोलाकार घुमाने का कारण अपकेन्द्री-बल की व्यवस्था करना है जिससे कि भारविहीनता की अनुभूति समाप्त हो जाएगी।

रोमिक का कहना है कि अन्तरिक्ष-स्टेशन का जितना चाहो, उतना विस्तार किया जा सकता है। वह 1,500 फुट लम्बे और पांच फुट व्यास वाले स्टेशन के निर्माण का सुझाव देते हैं। जिस पहिये पर रहने के कक्ष होंगे उसका व्यास 1,000 फुट होगा।

इस आकार के स्टेशन में 5,000 वैज्ञानिकों, टैक्नीशियनों और दर्शकों के लिए स्थान रहेगा। स्टेशन के एक छोर पर, पृथ्वी से आनेवाले 'मीटिग्रार जूनियर' के तीसरे खंड के लिए अवतरण-स्थल होगा। वायुयान राकेट से स्टेशन में उतरना संभव बना देगा।
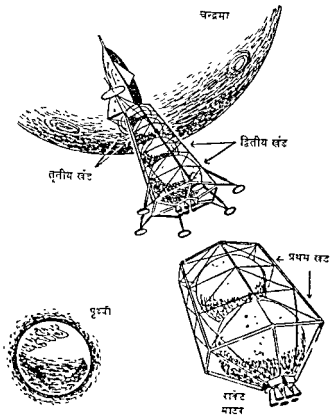
'मोटिमार जूनियर' के चन्द्रमा के समीप पहुँचते ही प्रथम खंड गिर जाएगा।

अन्तरिक्ष-स्टेशन में दर्शक बनकर जाना बड़ा ही रोमांचक और आनन्ददायक होगा। वहां आपके चारों ओर आकाश काला होगा और सूर्य व तारे, साथ-साथ चमक रहे होंगे।

तारे इतने चमकीले और स्पष्ट दिखाई देंगे जितने कि आपने पहले कभी नहीं देखे थे। तारों की झिलमिल भी नहीं दिखाई देगी, क्योंकि यह झिलमिलाहट वायुमंडल में हलचल के कारण दिखाई देती है।

सूर्य कहीं अधिक प्रखर होगा। उसके चारों ओर किनारे पर आग का एक छल्ला दिखाई देगा और उससे आगे एक विशाल रजत प्रभामंडल। ये सूर्य के वर्णमंडल और परिमंडल हैं, जिन्हें पृथ्वी से केवल पूर्ण सूर्यग्रहण के समय देखा जा सकता है।

पृथ्वी तुम्हें एक विशाल गोले की तरह दिखाई देगी जो नीली धुंध से घिरी होगी। एक छोटे से दूरबीन की सहायता से तुम्हें नदियों, पहाड़ों, समुद्रतट और महासागरों को देखने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

आपको ऐसा लगेगा कि अन्तरिक्ष यान बिलकुल स्थिर है और पृथ्वी आपके चारों ओर चक्कर लगा रही है।

अन्तरिक्ष-स्टेशन का निर्माण आसान नहीं होगा। इसके लिए अनेक समस्याओं का समाधान ज़रूरी है। इनमें से पहली है अन्तरिक्ष पोशाक तैयार करना, जिसकी सहायता से वैज्ञानिक और इंजीनियर बाहर आकाश में निकल सकेंगे।

ये पोशाकें किसी धातु या प्लास्टिक से बनाई जाएंगी। उन्हें दाबानुकूलित बनाना होगा। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी पीठ पर आक्सीजन भी ले जानी होगी।

इंजीनियरों और मैकेनिकों को, जो अन्तरिक्ष यान के विभि हिस्सों को जोड़ेंगे, उनके काम पर टिकाए रखने के लिए रस्सि या केबलों की जरूरत पड़ेगी। इसलिए नहीं कि उन्हें गिरने का ड होगा अपितु उन्हें बहाव से रोके रखने के लिए इनकी जरूरत पड़ेगी

कक्षा में प्रवेश करते ही सबसे बड़ा गर्डर भी भारविहीन जाएगा। ऐसे गर्डर को कक्षा में प्रविष्ट कराना मनुष्य के लिए बहु बड़ी बात नहीं होगी। लेकिन एक बार जब वह निर्दिष्ट दिशा उड़ना आरम्भ करेगा तो जब तक रोका न जाए उड़ता ही रहेगा इसीलिए मनुष्यों और सामान को इकट्ठा रखने के लिए रस्सि की जरूरत पड़ेगी।

यह सम्भव है कि निर्माण-कार्य के दौरान इधर-उधर जाने लिए छोटी 'अन्तरिक्ष टैक्सियों' का विकास किया जाए। इन टैक्सि के लिए बहुत कम राकेट-शक्ति की जरूरत पड़ेगी।

कारीगरों को अन्तरिक्ष में कार्य करने का आदी होना पड़ेगा पृथ्वी की सतह पर हवा के अणु सूर्य के प्रकाश को सभी दिशा में फैला देते हैं। लेकिन अन्तरिक्ष में किसी वस्तु का सूर्य के प्रक से आलोकित भाग अत्यन्त प्रखर होगा जबकि उसके पार्श्व भाग गहन अन्धकार होगा। शून्याकाश बिलकुल काला होगा, नीला न जैसा कि आकाश हमें दिखाई देता है।

प्रकाश की ये विचित्रताएं, अंतरिक्ष यान के विभिन्न हिस् को एक साथ जोड़नेवाले कारीगरों के लिए कठिनाई पैदा करेंगी

तापमान का प्रभाव भी इन व्यक्तियों को परेशान करेग वस्तुओं पर सूर्य की किरणें सीधी पड़ेंगी। सूर्य के प्रकाश में व भी चीज अत्यन्त गर्म हो जाएगी और छाया में अत्यन्त ठंडी।

13

चन्द्र अन्तरिक्ष यान

प्रथम अन्तरिक्ष यान, जो चन्द्रमा के लिए रवाना होगा, उन शक्तिशाली राकेटों से, जिनसे आप परिचित हैं, बिलकुल भिन्न दिखाई देगा। प्रथम नजर में, वह भद्दा और पतला-सा प्रतीत होगा।

इसका कारण यह है कि इस यान का निर्माण, पृथ्वी की सतह से 500 से 1000 मील की ऊंचाई पर स्थित अन्तरिक्ष-स्टेशन में होगा। उसे पृथ्वी के वायुमंडल के निचले सघन क्षेत्र से गुजरना नहीं पड़ेगा। परिणामतः इसके लिए, पृथ्वी की सतह से रवाना होनेवाले राकेट की तरह का डिज़ाइन जरूरी नहीं है।

बाह्याकाश में विमान की प्रगति पर उसके स्वरूप का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। उदाहरणतः, चन्द्र अन्तरिक्ष यान में अनेक बड़े, शीशे की तरह रेडार-एंटेना रखना सम्भव होगा।

जिन अन्तरिक्ष यानों के डिज़ाइन अब तक तैयार किए गए हैं, उनमें से अधिकांश में ईंधन-टंकी, राकेट मोटर और अन्य भाग बिलकुल खुले रखे गए हैं जिन्हें इस्पात अथवा अलुमीनियम के हलके फ्रेम में एक साथ बांध रखा गया है।

निस्सन्देह, चन्द्र अन्तरिक्ष यान का एक महत्वपूर्ण अंग कर्मीदल तथा यात्रियों के लिए कैबिन है। इसका डिज़ाइन सावधानी से

तैयार करना होगा।

चन्द्रमा तक पहुंचने में उतना ईंधन खर्च नहीं होगा जित
शायद आप सोचते होंगे, हालांकि चन्द्रमा 240 000 मील दूर
शायद आप ऐसी कल्पना करते होंगे कि अन्तरिक्ष यान अन्तरि
स्टेशन से रवाना होगा और सीधे चन्द्रमा की ओर उड़ जाए
जैसे कि एक विमान न्यूयार्क से शिकागो की उड़ता है। लेकिन ऐ
नहीं होगा।

चूंकि चन्द्र अन्तरिक्ष यान अन्तरिक्ष-स्टेशन पर बनाया जाए
वह अन्तरिक्ष-स्टेशन की गति से ही घूम रहा होगा। यह
18.000 प्रति घंटा से कुछ कम होगी और पृथ्वी की सतह से स्टे
की ऊंचाई पर निर्भर होगी।

चन्द्रमा पर पहुंचने के लिए, चालक अन्तरिक्ष यान की गति
बढ़ाकर 23,000 मील प्रति घंटा करने के लिए राकेट मोटरों
दागेगा।

इससे यान का परिक्रमा-पथ अंडाकार हो जाएगा। उ
परिक्रमा-पथ की सबसे कम ऊंचाई उतनी ही होगी जितनी
अन्तरिक्ष-स्टेशन की है और सबसे अधिक ऊंचाई चन्द्रमा से
ऊपर होगी।

इसलिए चन्द्र-यान पृथ्वी के चारों ओर घूमते हुए एवं अंडाक
पथ पर बढ़ते हुए चन्द्रमा के लिए रवाना होगा।

यह सम्भव है कि चन्द्रमा की प्रथम यात्रा में उसपर उत
का यत्न नहीं किया जाएगा। चन्द्र-यान चन्द्रमा के निकट पहु
जाएगा, उसकी गति धीमी पड़ती जाएगी। ऐसा इसलिए होगा
चन्द्रमा को जाते हुए यान पृथ्वी के गुरुत्व-बल के विरुद्ध निरंतर

रहा है।

परिणामतः, मून के आसपास पहुंचने के लिए चन्द्र-यान को लगभग 75 घंटे लगेंगे। उस समय तक उसकी गति इतनी धीमी हो चुकी होगी कि वह, 'मून मैसेंजर' की तरह, चन्द्रमा के चक्कर लगाने में 50 घंटे लेगा।

वापसी में उसकी गति बढ़ जाएगी, क्योंकि पृथ्वी का गुरुत्व-बल यान को पृथ्वी की ओर खींच रहा होगा। अन्तरिक्ष-स्टेशन के आसपास पहुंचने पर यान पुनः उसी गति से उड़ रहा होगा जिस गति से वह रवाना हुआ था। इस सारी यात्रा में कुल 157 घंटे लगेंगे।

जब चन्द्र-यान चन्द्रमा के आसपास पहुंच चुकेगा तो चालक, यदि चाहे, तो उसके परिक्रमा-पथ को बदल सकेगा ताकि यान चन्द्रमा के वृत्ताकार चक्कर लगा सके। ऐसा करने के लिए चालक अंतरिक्ष विमान के पिछले भाग को आगे कर देगा और थोड़े समय के लिए
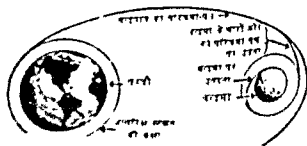
मोटर चालू कर देगा। अब जेट ब्रेक का कार्य करेंगे और यान की गति धीमी कर देंगे।

अब यान चन्द्रमा का एक उपग्रह बन जाएगा और उसके गुरुत्व-बल के प्रभाव से, उसका चक्कर लगाना रहेगा।

यदि चालक चन्द्रमा में उतरने का निर्णय करना है तो उतरने के वास्ते किसी उपयुक्त स्थल का चुनाव करने के लिए उसे चन्द्रमा के कई चक्कर लगाने होंगे। इसके बाद वह पुन मोटर चालू करेगा और इस प्रकार यान की गति को और धीमी करते हुए चन्द्रमा की सतह पर उतरेगा।

चन्द्रमा पर उतरने में काफी सावधानी बरतनी होगी। अंतरिक्ष यान के पिछले हिस्से में, कैमरे के त्रिपाद के समान, अनेक पाद होंगे। चालक बहुत धीरे से यान को नीचे लाएगा, उसकी गति को धीमी करने के लिए मोटर चालू करेगा और अंत में इन पादों पर उसे खड़ा कर देगा। ऐसा करने पर ही वह वापसी यात्रा के लिए उड़ान भरने की स्थिति में होगा।

डा० डारेल सी० रोमिक, जिन्होंने अन्तरिक्ष-स्टेशन के निर्माण में, 'मीटिग्रार जूनियर' के तीसरे खंड के प्रयोग का सुझाव दिया था, ने इसी खंड का प्रयोग करते हुए चन्द्र-यान का एक डिज़ाइन तैयार किया है।

उनकी योजना का एक लाभ यह है कि अन्तरिक्ष-स्टेशन के निर्माण में समय की बचत होगी। दूसरा लाभ यह है कि सभी नियन्त्रण तथा मार्ग निर्देशन यंत्रों की परख, 'मीटिग्रार जूनियर' के अन्तरिक्ष-स्टेशन के लिए रवाना होने से पूर्व, भूमि पर ही की जा सकती है।
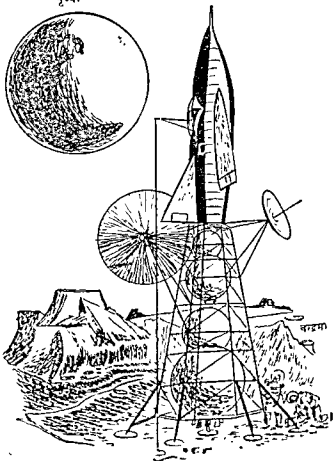
...जूनियर' अपने पिछले हिस्से पर नीचे उतरेगा ताकि वह उड़ान भरने के लिए तैयार रहे

अन्तरिक्ष-स्टेशन पर, केवल अन्य तीन खडों का ही निर्माण करना होगा। इनका निर्माण ईंधन-टकियों और राकेट-मोटरो पर ही किया जाएगा। किन्तु एक के ऊपर दूसरे इन तीन खडों के बाहर इस्पात अथवा अलुमीनियम के हलके गर्डरों का फ्रेम लगाना होगा।

चन्द्र-यान को अंडाकार पथ पर रखने के लिए प्रथम खड दागा जाएगा। जब यह खंड अपना ईंधन समाप्त कर लेगा तो वह अन्तरिक्ष यान से अलग हो जाएगा और उसे अन्तरिक्ष में ही छोड दिया जाएगा।

जब यान चन्द्रमा के आसपास पहुंचेगा तो पहले यान को चन्द्रमा के चारों ओर कक्षा में स्थापित करने के लिए और उसके बाद उसे चन्द्र-सतह पर लाने के लिए द्वितीय खंड के मोटर चालू किए जाएंगे। यान का पिछला भाग पहले सतह पर लगेगा और वह अपने पांवों पर खड़ा हो जाएगा, जैसा कि चित्र मे दर्शाया गया है।

चन्द्रमा पर उतरने में द्वितीय खंड का ईंधन समाप्त हो जाएगा। परिणामत:, जब चन्द्रमा से रवाना होने का समय होगा, द्वितीय खंड अलग कर दिया जाएगा और वह केवल निर्माण मंच का काम देगा।

अब तीसरे खंड के मोटर चालू किए जाएगे और चन्द्र-यान, द्वितीय खंड को वही छोड़कर, चन्द्रमा की सतह से ऊपर उठना शुरु कर देगा। अब पहले की अपेक्षा, यान को पुन. अंडाकार कक्षा में स्थापित करना आसान होगा। इसका कारण यह है, कि चन्द्रमा का गुरुत्व-बल पृथ्वी के गुरुत्व-बल से केवल छठा भाग है।

जब चन्द्र-यान अन्तरिक्ष-स्टेशन के आसपास लौट आएगा, तो चालक तीसरे खंड को छोड़ सकता है। वह अपने यात्रियों को अन्त-

रिक्ष स्टेशन पर छोड़ सकता है। या वह यान की गति को धीमा करने के लिए चौथे खंड के मोटरों का प्रयोग कर सकता है और एक छोटे अंडाकार पथ पर बढ़ जाएगा जिससे वह वायुमंडल के सघन क्षेत्र में आ जाएगा। यहां से वह पृथ्वी की सतह पर उतर आएगा।

चन्द्रमा की यात्रा बड़ी ही उत्तेजनापूर्ण होगी। निर्माण-स्थल पर तुम मोटर-गाड़ी में ठीक उसी तरह जाओगे जैसे विमान पकड़ने के लिए हवाई अड्डे पर जाते हो।

एक लिफ्ट तुम्हें ऊपर गन्त्री क्रेन के किसी बुर्ज में ले जाएगा, जहां से तुम परिवहन राकेट के तीसरे खंड-स्थित कैबिन में पहुंचोगे।

जब सब यात्री बैठ चुकेंगे, केबिन के दरवाज़े अच्छी तरह बन्द कर दिए जाएगे और वातानुकूलन-यंत्र चालू कर दिए जाएंगे। इसके बाद गंत्री क्रेन हटा दिया जाएगा।

कार्यभारी चालक अपने यंत्रों की जांच करेगा और फिर रवाना होने का संकेत देगा।

रवाना होने पर, आपकी और अन्य यात्रियों की सीटें पीछे की ओर इस तरह झुका दी जाएंगी कि वे चारपाई का रूप ले लेंगी। प्रथम खंड के मोटरों के चालू होते ही, भारी गड़गड़ाहट की आवाज़ होगी। राकेट के ऊपर उठने पर आप 4जी दबाव अनुभव करेंगे।

लेकिन कुछ ही मिनटों में, मोटर अपना ईंधन समाप्त कर चुकेगा और अब आप भारविहीनता का अनुभव करेंगे। जब आप मूकों (पोर्टहोल) से बाहर देखेंगे तो आपको बहुत नीचे पृथ्वी दिखाई देगी और आप उसे पहचान लेंगे। जैसे-जैसे आप ऊपर

उठते जाएंगे, आकाश निरंतर कम नीला दिखाई देगा। अन्त में वह काला दिखाई देने लगेगा और तारों के साथ सूर्य को भी देख सकेंगे।

जब द्वितीय खंड के मोटर चालू किए जाएंगे तो आपको 'जी' में वृद्धि का अनुभव होगा। ऐसा ही अनुभव तब होगा जब तीसरे खंड के मोटर चालू किए जाएंगे।

अन्तरिक्ष-स्टेशन पहुंचने पर वायुपाश के जरिए तुम्हें राकेट के कैबिन से स्टेशन पर स्थानान्तरित किया जाएगा। स्टेशन पर भोजन करने के बाद एक बार वायुपाश का फिर प्रयोग करना होगा, इस बार चन्द्र-यान के कैबिन में अपना स्थान ग्रहण करने के लिए। अब आप चन्द्रमा की ओर बढ़ रहे होंगे।

14

चन्द्रमा की खोज

जब हमारे चन्द्र-यान के मोटर चालू होंगे और यान अन्तरिक्ष-स्टेशन को पीछे छोड़कर आगे बढ़ जाएगा तो तथाकथित चन्द्र-मानव हमारी ओर मुस्कराता प्रतीत होगा। चन्द्रमा अब इतना अधिक चमकीला और उज्ज्वल दिखाई देगा जितना कि पृथ्वी से हमने पहले कभी नहीं देखा था, क्योंकि अब हमारे दृश्य में दखल देनेवाला वायुमंडल नहीं रह गया है।

जैसे-जैसे घंटे बीतते जाएंगे, चन्द्रमा का आकार बड़ा होता जाएगा और उसकी चमक भी बढ़ती जाएगी। शीघ्र ही हमें चन्द्रमा का ऐसा दृश्य दिखाई देने लगेगा जैसाकि हम पृथ्वी से छोटे दूरबीन की सहायता से देख सकते हैं।

अब हम देखते हैं कि चन्द्र-मानव वास्तव में चन्द्रमा की सतह पर अनेक अंधकारमय क्षेत्र हैं। हम उन विशाल पर्वत-शृंखलाओं को जो इन क्षेत्रों को चारों ओर से घेरे हुई हैं, तथा उन क्रेटरों को जो चन्द्रमा की दृश्यमान सतह पर भरे पड़े है, देखते हैं।

1609 में जब गैलीलियो ने प्रथम बार इस रजत चकती की ओर अपना दूरबीन घुमाया तो उसे चन्द्रमा ऐसा ही दिखाई दिया था। उसने सोचा कि ये अन्धकारमय क्षेत्र महासागर हैं और इस-

लिए उसने इन्हें 'मैरिया' कहा, जो कि समुद्र के लिए लैटिन
का शब्द है।

अब हम यह जानते हैं कि चन्द्रमा मे न तो हवा है और
पानी, और गैलीलियो ने जिन्हे समुद्र समझा था वे विशाल मैद

किन्तु हम अब भी इन क्षेत्रों को उन्ही कवितामय ना
पुकारते हैं जो इन्हें गैलीलियो के काल में दिए गए थे।
लैटिन भाषा में थे, इसीलिए हम कहते हैं 'मेयर सीरीनिटैटि
'सी आफ ट्रैंक्विलिटी', 'मेयर इम्ब्रियम' या 'सी आफ रेन्स',

गैलीलियो के काल से ही खगोलशास्त्री चन्द्रमा के नक
रहे हैं और हमारे मार्ग-निर्देशकों के पास कुछेक हाल के बने
के नक्शे भी हैं। ये नक्शे हमें पर्वत-श्रेणियों, क्रेटरों तथा मै
नाम बताते हैं।

लेकिन हमारे लिए इन नक्शों की अपेक्षा चन्द्रमा के
महत्वपूर्ण हैं जो मार्ग-निर्देशक के पास हैं। ये चित्र माउंट
तथा पैलोमार पर्वत-स्थित विशाल दूरबीनों की सहायता से
गए। इन चित्रों में हमें चन्द्रमा की सतह उसी तरह दिख
है जैसेकि वह चन्द्रमा से दो सौ मील की दूरी से दिखाई

जब हम चन्द्रमा से केवल दो सौ मील दूर रह जाए
हमारे अंतरिक्ष-यान का चालक यान को चन्द्रमा के चारों अ
वृत्ताकार परिक्रमा-पथ पर ले जाएगा। अब हम बिना कि
की सहायता के चन्द्रमा का वह रूप देख सकेंगे जो पहले
शास्त्रियों ने माउंट विलसन-स्थित 100-इंची विशाल दू
एवं पैलोमार पर्वत-स्थित विश्व की सबसे बड़ी 200-इंची
से देखा था।

देखते हैं कि क्रेटरों के नाम कापर्निकस, टाइको, केपलर आदि है। चन्द्रमा के सबसे बड़े क्रेटर का नाम क्लैवियस है। इसका व्यास 146 मील है। चन्द्रमा के पृथ्वी से दिखाई देनेवाले भाग में लगभग 32 000 क्रेटर हैं।

कुछेक क्रेटर समतल हैं जो चारों ओर पहाड़ों से घिरे हैं। सामान्यतः, क्रेटरों का तल आसपास के चन्द्र-सतह से नीचा है, लेकिन कुछेक क्रेटर प्रायः लावा या धूल से भरे-से प्रतीत होते हैं।

कुछ अन्य क्रेटरों का अन्दरूनी भाग तश्तरी की शक्ल का होता है, जबकि कुछेक के मध्य से पर्वत-चोटी निकली हुई होती है।

चन्द्रमा की असमतल सतह क्रेटरों की अजीब खिचड़ी से ढकी है। वहां बड़े क्रेटर हैं और छोटे भी। वहा क्रेटरों के अन्दर क्रेटर हैं और ऐसे क्रेटर हैं जो अन्य क्रेटरों की दीवारों को तोड़ते हुए उनमें घुस गए हैं।

हमें चन्द्र-सतह की अन्य विचित्र और दिलचस्प वस्तुएं दिखाई देती हैं। वहां लम्बी और सीधी चट्टानें हैं, इनमें से कुछेक 50 मील लम्बी हैं। ऐसा ख्याल किया जाता है कि चन्द्र-सतह के बड़े-बड़े गड्ढों से ये चट्टानें बनी हैं।

हमें चन्द्रमा की सतह में गहरी दरारें भी दिखाई देती हैं। इन्हें 'रिल' कहते हैं और कोई-कोई 'रिल' तो 90 से 100 मील तक लम्बी होती है।

एक विचित्र बात यह है कि क्रेटरों से सभी दिशाओं को हलके रंग की धारियां फैली रहती हैं। खगोलशास्त्री इन्हें किरणें कहते हैं। ये पहाड़ों और घाटियों पर सीधी चली जाती हैं।

चन्द्रमा के कई चक्कर लगाने के बाद हमारा चालक नीचे

पिछले तीन सौ वर्षों में खगोलशास्त्रियों ने जो अध्ययन किया है, उससे हम जानते हैं कि चन्द्रमा का व्यास 2,163 मील है। हमारी पृथ्वी का व्यास, जैसाकि आप जानते हैं, 7,920 मील है।

कुछेक 'सागर' बहुत बड़े हैं और करीब-करीब वृत्ताकार हैं। 'मेयर इम्ब्रियम' का व्यास 700 मील है। 'मेयर सेरेनिटेटिस' का व्यास 430 मील है।

चन्द्रमा पर दस विशाल पर्वत-श्रेणियां हैं। उनका नाम पृथ्वी की पर्वत-श्रेणियों के नाम पर ही रखा गया है। इसीलिए चन्द्र आल्प्स, चन्द्र एपिनाइन्स आदि कहते हैं। ये पर्वत-श्रेणियां अत्यधिक असमतल हैं और इनमें कई ऊंची-ऊंची चोटियां हैं।

इनमें सबसे बड़ी पर्वत-श्रेणी चन्द्र एपिनाइन्स है, जो 'मेयर इम्ब्रियम' के एक ओर 640 मील तक एक विशाल वक्र के रूप में चली गई है। इसमें तीन हजार से अधिक ऊंची चोटियां हैं; इनमें से कुछेक तो 18,000 फुट ऊंची हैं।

जब हमारा अन्तरिक्ष-यान चन्द्रमा का चक्कर लगाता है तो हमें ऐसा दृश्य दिखाई देता है जो पृथ्वी से दिखाई देनेवाले दृश्यों से बिलकुल भिन्न होता है।

सबसे आश्चर्यजनक वस्तु क्रेटर हैं। ये सर्वत्र हैं। ये बुझे हुए ज्वालामुखी से दिखाई देते हैं। किन्तु ये सब एक से नहीं हैं और कुछेक का आकार तो इतना छोटा है कि वे चन्द्रमा से 200 मील की दूरी से मुश्किल से दिखाई देते हैं, जबकि कुछेक इतने बड़े हैं कि उनका व्यास 100 मील है।

चन्द्रमा का नक्शा बनानेवालों ने अधिकांश क्रेटरों के नाम [illegible] के खगोलशास्त्रियों के नाम पर रखे हैं। इसीलिए हम

देखते हैं कि क्रेटरों के नाम कापरनिकस, टाइको, केपलर आदि हैं। चन्द्रमा के सबसे बड़े क्रेटर का नाम क्लेवियस है। इसका व्यास 146 मील है। चन्द्रमा के पृथ्वी से दिखाई देनेवाले भाग में लगभग 32 000 क्रेटर हैं।

कुछेक क्रेटर समतल हैं जो चारों ओर पहाड़ों से घिरे हैं। सामान्यतः, क्रेटरों का तल आसपास के चन्द्र-सतह से नीचा है, लेकिन कुछेक क्रेटर अन्ततः लावा या धूल से भरे-से प्रतीत होते हैं।

कुछ अन्य क्रेटरों का अन्दरूनी भाग तश्तरी की शक्ल का होता है, जबकि कुछेक के मध्य से पर्वत-चोटी निकली हुई होती है।

चन्द्रमा की असमतल सतह क्रेटरों की अजीब खिचड़ी से ढकी है। वहां बड़े क्रेटर हैं और छोटे भी। वहां क्रेटरों के अन्दर क्रेटर हैं और ऐसे क्रेटर हैं जो अन्य क्रेटरों की दीवारों को तोड़ते हुए उनमें घुस गए हैं।

हमें चन्द्र-सतह की अन्य विचित्र और दिलचस्प वस्तुएं दिखाई देती हैं। वहां लम्बी और सीधी चट्टानें हैं, इनमें से कुछेक 50 मील लम्बी हैं। ऐसा ख्याल किया जाता है कि चन्द्र-सतह के बड़े-बड़े गड्ढों से ये चट्टानें बनी हैं।

हमें चन्द्रमा की सतह में गहरी दरारें भी दिखाई देती हैं। इन्हें 'रिल' कहते हैं और कोई-कोई 'रिल' तो 90 से 100 मील तक लम्बी होती है।

एक विचित्र बात यह है कि क्रेटरों से सभी दिशाओं को हलके रंग की धारियां फैली रहती हैं। खगोलशास्त्री इन्हें किरणें कहते हैं। ये पहाड़ों और घाटियों पर सीधी चली जाती हैं।

चन्द्रमा के कई चक्कर लगाने के बाद हमारा चालक नीचे

पिछले तीन सौ वर्षों में खगोलशास्त्रियों ने जो अध्ययन किया है, उससे हम जानते हैं कि चन्द्रमा का व्यास 2,163 मील है। हमारी पृथ्वी का व्यास, जैसाकि आप जानते हैं, 7,920 मील है।

कुछेक 'मेरिया' बहुत बड़े हैं और करीब-करीब वृत्ताकार हैं। 'मेयर इम्ब्रियम' का व्यास 700 मील है। 'मेयर सीरीनिटैटिस' का व्यास 430 मील है।

चन्द्रमा पर दस विशाल पर्वत-श्रेणियां है। उनका नाम पृथ्वी की पर्वत-श्रेणियों के नाम पर ही रखा गया है। इसीलिए चन्द्र आल्प्स, चन्द्र एपिनाइन्स आदि कहते हैं। ये पर्वत-श्रेणियां अत्यधिक असमतल हैं और इनमें कई ऊंची-ऊंची चोटियां हैं।

इनमें सबसे बड़ी पर्वत-श्रेणी चन्द्र एपिनाइन्स है, जो 'मेयर इम्ब्रियम' के एक ओर 640 मील तक एक विशाल वक्र के रूप में चली गई है। इसमें तीन हजार से अधिक ऊंची चोटियां हैं; इनमें से कुछेक तो 18,000 फुट ऊंची हैं।

जब हमारा अन्तरिक्ष-यान चन्द्रमा का चक्कर लगाता है तो हमें ऐसा दृश्य दिखाई देता है जो पृथ्वी से दिखाई देनेवाले दृश्यों से बिलकुल भिन्न होता है।

सबसे आश्चर्यजनक वस्तु क्रेटर हैं। ये सर्वत्र हैं। ये बुझे हुए ज्वालामुखी से दिखाई देते हैं। किन्तु ये सब एक से नहीं हैं और कुछेक का आकार तो इतना छोटा है कि ये चन्द्रमा से 200 मील की दूरी से मुश्किल से दिखाई देते हैं, जबकि कुछेक इतने बड़े हैं कि उनका व्यास 100 मील है।

चन्द्रमा का नक्शा बनानेवालों ने अधिकांश क्रेटरों के नाम भूतकाल के खगोलशास्त्रियों के नाम पर [illegible] लिए हम

देखते हैं कि क्रेटरों के नाम कापर्निकस, टाइचो, केपलर आदि है। चन्द्रमा के सबसे बड़े क्रेटर का नाम क्लेवियस है। इसका व्यास 146 मील है। चन्द्रमा के पृथ्वी से दिखाई देनेवाले भाग में लगभग 32 000 क्रेटर हैं।

कुछेक क्रेटर समतल हैं जो चारो ओर पहाड़ो से घिरे है। सामान्यतः, क्रेटरों का तल आसपास के चन्द्र-सतह से नीचा है, लेकिन कुछेक क्रेटर अंशतः लावा या धूल से भरे-से प्रतीत होते है।

कुछ अन्य क्रेटरों का अन्दरूनी भाग तश्तरी की शक्ल का होता है, जबकि कुछेक के मध्य से पर्वत-चोटी निकली हुई होती है।

चन्द्रमा की असमतल सतह क्रेटरों की अजीब खिचड़ी से ढकी है। वहां बड़े क्रेटर हैं और छोटे भी। वहां क्रेटरो के अन्दर क्रेटर है और ऐसे क्रेटर हैं जो अन्य क्रेटरों की दीवारो को तोड़ते हुए उनमें घुस गए है।

हमें चन्द्र-सतह की अन्य विचित्र और दिलचस्प वस्तुए दिखाई देती है। वहां लम्बी और सीधी चट्टानें है, इनमें से कुछेक 50 मील लम्बी हैं। ऐसा ख्याल किया जाता है कि चन्द्र-सतह के बड़े-बड़े खंडों से ये चट्टानें बनी है।

हमें चन्द्रमा की सतह मे गहरी दरारें भी दिखाई देती हैं। इन्हें 'रिल' कहते हैं और कोई-कोई 'रिल' तो 90 से 100 मील तक लम्बी होती है।

एक विचित्र बात यह है कि क्रेटरों से सभी दिशाओं को हलके रंग की धारियां फैली रहती है। खगोलशास्त्री इन्हें किरणें कहते हैं। ये पहाड़ों और घाटियों पर सीधी चली जाती हैं।

चन्द्रमा के कई चक्कर लगाने के बाद हमारा चालक नीचे

उतारने का निर्णय करता है और अन्त में चन्द्र एलिनाइन्स की तश्तरी के समीप लेसर इलिवगम पर धीरे से उतरता है। हम जब तक अन्तरिक्ष-पोशाक न पहन लें, अपने यान से उतर नहीं सकते।

पृथ्वी से चन्द्रमा कितना ही सुन्दर क्यों न दिखाई दे, यह स्थान यात्रियों के लिए खतरनाक है। चन्द्रमा में न तो हवा है और न पानी। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों में केवल चट्टानें ही चट्टानें हैं। न तो तेजी से बहनेवाले पहाड़ी झरने हैं, न देवदार के पेड़ हैं, और न हरे-भरे मैदान।

चन्द्रमा की सतह पर सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं। इन किरणों से हमारी रक्षा करने के लिए वायु का आवरण भी नहीं है।

चूंकि चन्द्रमा अपनी धुरी पर बहुत हलकी गति से घूमता है—वह धुरी का एक चक्कर लगाने में उतना ही समय लेता है जितना कि पृथ्वी का एक चक्कर लगाने में—इसलिए उसके किसी एक स्थल पर दो सप्ताह तक सूर्य का प्रकाश रहता है और उसके बाद दो सप्ताह तक अँधेरा।

लम्बे चान्द्र-दिन में तापमान खौलते हुए पानी के तापमान के बराबर अर्थात् 212 डिग्री फारेनहाइट तक पहुंच जाता है। लम्बी चान्द्र-रात में तापमान शून्य से 243 डिग्री नीचे गिर जाता है।

इसलिए, यदि हमें चन्द्र-सतह पर इधर-उधर घूमना हो तो जरूरी है कि हमारी अन्तरिक्ष-पोशाक वायुनुकूलित हो।

हम देखते हैं कि चन्द्रमा की सतह भुरभुरी चट्टान और धूल की मोटी सतह से ढकी है। इससे हमारे लिए इधर-उधर जाना कठिन हो जाता है क्योंकि यह धूल लीकों, दरारों और छोटे क्रेटरों को भर देती है। हमें बहुत सतर्क रहना होगा, क्योंकि कुछेक दरारें

काफी गहरी हो सकती है और कुछेक स्थानों पर हो सकता है कि चट्टानों की तीखी नोकें धूल से ढकी हुई हो।

परन्तु यह तथ्य कि चन्द्रमा का गुरुत्व-बल बहुत कम है, हमारे लिए सहायक है। चन्द्रमा का गुरुत्व-बल पृथ्वी के गुरुत्व-बल के छठे भाग के बराबर है। परिणामतः हम वहा बिना किसी कठिनाई के 25 फुट तक छलांग लगा सकते है।

चन्द्रमा की सतह पर उल्काओं की निरन्तर वर्षा होती रहती है। भुरभुरी चट्टानों की परत अधिकाशत इसी वर्षा का परिणाम है।

चन्द्रमा में क्रेटरो की विद्यमानता के विषय मे दो सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए है। एक तो यह कि ये क्रेटर ज्वालामुखी है, जो चन्द्रमा के प्रारम्भिक काल में बने थे। दूसरा सिद्धान्त यह है कि उल्काओं के प्रभाव से ये क्रेटर बने है।

ऐसा ख्याल किया जाता है कि सौर-परिवार के प्रारम्भिक काल में आज की अपेक्षा कही बडी उल्काए होंगी। इन विशाल उल्काओं ने चन्द्रमा की सतह से टकराकर क्रेटर बना दिए होंगे।

आप सोचेंगे कि इस प्रकार के क्रेटर पृथ्वी पर क्यो नहीं हैं। लेकिन एरिज़ोना में एक ऐसा क्रेटर है जिसका नाम मीटिआर क्रेटर है।

हो सकता है कि कभी पहले पृथ्वी पर और भी क्रेटर रहे हों। लेकिन वायु, वर्षा, तेज़ी से प्रवाहित होनेवाली नदियो और भू-क्षरण करनेवाली अन्य शक्तियों ने इन क्रेटरों को समाप्त कर दिया है।

चन्द्रमा पर क्योंकि हवा तथा पानी नहीं हैं, इसलिए वहां भू-क्षरण की कोई शक्ति विद्यमान नही है। अतः वहां अब भी क्रेटर है।

उतरने का निर्णय करता है और अन्त में [illegible] की सतह ही के [illegible] धीरे से उतारता है। हम जब तक अन्तरिक्ष-पोशाक न पहन लें, अपने यान से उतर नहीं सकते।

पृथ्वी से चन्द्रमा कितना ही सुन्दर क्यों न दिखाई दे, वह स्थान यात्रियों के लिए खतरनाक है। चन्द्रमा में न तो हवा है और न पानी। ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों में केवल चट्टानें ही चट्टानें हैं। न तो तेजी से बहनेवाले पहाड़ी झरने हैं, न देवदार के पेड़ हैं, और न हरे-भरे मैदान।

चन्द्रमा की सतह पर सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं। इन किरणों से हमारी रक्षा करने के लिए वायु का आवरण भी नहीं है।

चूंकि चन्द्रमा अपनी धुरी पर बहुत हलकी गति से घूमता है—वह धुरी का एक चक्कर लगाने में उतना ही समय लेता है जितना कि पृथ्वी का एक चक्कर लगाने में—इसलिए उसके किसी एक स्थल पर दो सप्ताह तक सूर्य का प्रकाश रहता है और उसके बाद दो सप्ताह तक अंधेरा।

लम्बे चान्द्र-दिन में तापमान खौलते हुए पानी के तापमान के बराबर अर्थात् 212 डिग्री फारेनहाइट तक पहुंच जाता है। लम्बी चान्द्र-रात में तापमान शून्य से 243 डिग्री नीचे गिर जाता है।

इसलिए, यदि हमें चन्द्र-सतह पर इधर-उधर घूमना हो तो ज़रूरी है कि हमारी अन्तरिक्ष-पोशाक वायुनुकूलित हो।

[illegible] देखते है कि चन्द्रमा की सतह भुरभुरी चट्टान और धूल की [illegible] से [illegible] है। इससे हमारे लिए इधर-उधर जाना कठिन [illegible] धूल लीकों, दरारों और छोटे क्रेटरों को [illegible] सतर्क रहना होगा, क्योंकि कुछेक दरारें

काफी गहरी हो सकती है और कुछेक स्थानों पर हो सकता है कि चट्टानों की तीखी नोकें धूल से ढकी हुई हों।

परन्तु यह तथ्य कि चन्द्रमा का गुरुत्व-बल बहुत कम है, हमारे लिए सहायक है। चन्द्रमा का गुरुत्व-बल पृथ्वी के गुरुत्व-बल के छठे भाग के बराबर है। परिणामतः हम वहां बिना किसी कठिनाई के 25 फुट तक छलांग लगा सकते हैं।

चन्द्रमा की सतह पर उल्काओं की निरन्तर वर्षा होती रहती है। भुरभुरी चट्टानों की परत अधिकांशतः इसी वर्षा का परिणाम है।

चन्द्रमा में क्रेटरों की विद्यमानता के विषय में दो सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं। एक तो यह कि ये क्रेटर ज्वालामुखी हैं, जो चन्द्रमा के प्रारम्भिक काल में बने थे। दूसरा सिद्धान्त यह है कि उल्काओं के प्रभाव से ये क्रेटर बने हैं।

ऐसा ख्याल किया जाता है कि सौर-परिवार के प्रारम्भिक काल में आज की अपेक्षा कहीं बड़ी उल्काएं होंगी। इन विशाल उल्काओं ने चन्द्रमा की सतह से टकराकर क्रेटर बना दिए होंगे।

आप सोचेंगे कि इस प्रकार के क्रेटर पृथ्वी पर क्यों नहीं हैं। लेकिन एरिज़ोना में एक ऐसा क्रेटर है जिसका नाम मीटिआर क्रेटर है।

हो सकता है कि कभी पहले पृथ्वी पर और भी क्रेटर रहे हों। लेकिन वायु, वर्षा, तेज़ी से प्रवाहित होनेवाली नदियों और भू-क्षरण करनेवाली अन्य शक्तियों ने इन क्रेटरों को समाप्त कर दिया है।

चन्द्रमा पर क्योंकि हवा तथा पानी नहीं है, इसलिए वहां भू-क्षरण की कोई शक्ति विद्यमान नहीं है। अतः वहां अब भी क्रेटर हैं।

खगोलशास्त्री चन्द्रमा पर जाना चाहेंगे ताकि उसके विषय में अनेक समस्याओं का समाधान हो सके। इन समस्याओं में क्रेटरों की उत्पत्ति, रहस्यमय किरणों का स्वरूप, चट्टानों की बनावट आदि शामिल हैं।

इस बात की भी सम्भावना है कि चन्द्रमा में मूल्यवान कच्ची धातु और खनिज हों। सम्भव है, कभी हम चन्द्रमा पर खानों की खुदाई कर चांदी, सोना और प्लैटिनम पृथ्वी पर लाएं।

15

परमाणु अंतरिक्ष यान

एक बार जब साहसिक गवेषक चन्द्रमा पर पहुंच जाएंगे तो उनका अगला लक्ष्य मंगल ग्रह होगा। सौर-परिवार के किसी अन्य सदस्य ने इतना ध्यान आकर्षित नहीं किया है जितना कि मंगल ने।

कभी-कभी शाम को वह आकाश में विशाल लाल लालटेन की तरह दिखाई देता है। तब विश्व के सभी खगोलशास्त्री इस लाल ग्रह की ओर अपने दूरबीन लगा देते हैं। तब यह पृथ्वी के सर्वाधिक निकट होता है और खगोलशास्त्रियों के लिए इसकी पहेलियां सुलझाने का यही सर्वोत्तम अवसर होता है।

हर दो वर्ष और दो महीने बाद पृथ्वी और मंगल एक-दूसरे के इतने निकट आते हैं।

पृथ्वी, जैसाकि आप जानते हैं, सूर्य से 9 करोड़ 30 लाख मील दूर है और उसकी एक बार परिक्रमा $365\frac{1}{4}$ दिन में करती है। मंगल सूर्य से 14 करोड़ 10 लाख मील दूर है और उसकी एक परिक्रमा करने में 687 दिन लगते हैं।

पृथ्वी और मंगल ग्रह की दूरी दिन-प्रतिदिन बदलती रहती है, क्योंकि दोनों ही भिन्न-भिन्न गति से सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। जब इनमें से एक सूर्य के इस ओर और दूसरा दूसरी ओर होता है

इन दोनों के बीच की दूरी सर्वाधिक होती है ।

जब ये दोनों सूर्य के एक ही ओर होते हैं तो इनके बीच की दूरी
रसे कम होती है । ऐसा दो वर्ष दो महीने में एक बार होता है ।

खगोलशास्त्री इस घटना को 'पड्भांतर' कहते हैं । चूंकि इन
नों ही ग्रहों के परिक्रमा-पथ अंडाकार होते हैं इसलिए 'पड्भांतर'
र इनके बीच का निश्चित फासला इस बात पर निर्भर करता
कि 'पड्भांतर' कहां पर हुआ ।

पड्भांतर पर औसत फासला 4 करोड़ 80 लाख मील होता
। लेकिन यह फासला बढ़कर 6 करोड़ 20 लाख मील भी हो
कता है और घटकर 3 करोड 60 लाख मील भी रह सकता है ।

इस विवरण से आप जान सकते हैं कि मंगल पर पहुंचने में
न्द्रमा की अपेक्षा अधिक समय लगेगा । चन्द्रमा केवल 240,000
ील दूर है । किन्तु आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि मंगल
र पहुंचना चन्द्रमा पर पहुंचने से बहुत ज्यादा कठिन नहीं होगा ।

आपको इस बात से भी आश्चर्य होगा कि अन्तरिक्ष मार्ग-
ार्देशक उस समय मंगल के लिए रवाना नहीं होंगे जबकि वह
थ्वी के सर्वाधिक निकट होगा । पृथ्वी से एक सीधी लाइन में
गल तक उड़ने में इतने अधिक ईंधन की खपत होगी जितना कि
न्तरिक्ष-यान अपने साथ नहीं ले जा सकता ।

पहले अन्तरिक्ष-यान को उपयुक्त कक्ष में स्थापित किया जाएगा
ौर उसके बाद उसे मंगल की ओर उड़ाया जाएगा । अध्याय 8 में
ाप पढ़ ही चुके हैं कि चन्द्रमा पर पहुंचने के लिए भी ऐसी ही
ोजना थी ।

डा० वर्नहर वान ब्रौन सहित अनेक राकेट-विशेषज्ञों ने मंगल

अन्तरिक्ष यानों के डिजाइन तैयार किए है, जो हाइड्रोजन तथा नीट्रिक अम्ल जैसे तरल ईंधन का प्रयोग करेंगे।

ऐसे अन्तरिक्ष यान का निर्माण अन्तरिक्ष-स्टेशन पर किया जाएगा और वहीं से उड़ान भरेगा। इसका वज़न 1700 टन होगा। इसमें से काफी भार प्रणोदकों का होगा। कैबिन में 6 या 8 व्यक्तियों के लिए स्थान होगा।

चूंकि मंगल अन्तरिक्ष-यान का निर्माण अन्तरिक्ष-स्टेशन पर होगा, इसलिए वह पहले ही पृथ्वी की उसी गति से चक्कर काट रहा होगा जिस गति से अन्तरिक्ष-स्टेशन। चालक को केवल राकेट के मोटर चालू करने होंगे ताकि यान की गति 25,000 मील प्रति घंटा तक पहुंच जाए। पृथ्वी के गुरुत्वीय खिंचाव से बच निकलने के लिए यह गति ज़रूरी है।

एक बार पृथ्वी के गुरुत्वीय खिंचाव से बच निकलने के बाद यान सूर्य की परिक्रमा कर रहा होगा। सभी व्यावहारिक दृष्टियो से वह एक छोटा ग्रह होगा, जो पृथ्वी और मंगल की तरह सूर्य का चक्कर लगा रहा है।

अब चालक को इस प्रकार यान की गति को समजित करना होगा जिससे कि उसका परिक्रमा-पथ अंडाकार बन जाए और उसका निम्नतम बिन्दु अन्तरिक्ष-स्टेशन पर और उच्चतम बिन्दु मंगल की कक्षा पर होगा।

अब मंगल अन्तरिक्ष-यान मंगल की कक्षा को जाते हुए आधे मार्ग तक सूर्य की परिक्रमा करेगा। इस यात्रा की योजना ठीक-ठीक बनानी होगी ताकि अन्तरिक्ष-यान मंगल पर पहुंच सके। मंगल पर पहुंचने के लिए यान को 260 दिन लगेंगे।

किया जाता है।

छाते का ऊपरी हिस्सा वास्तव में खोखला होता है। टर्बाइन से भाप इसमें प्रवेश करती है। यहां वह बहुत जल्दी ठंडी हो जाती है और फिर तरल रूप में संकलित हो जाती है और वापस न्यूक्लीय रिऐक्टर में पहुंच जाती है ताकि उसकी फिर भाप बन सके।

परमाणु अन्तरिक्ष-यान को चलानेवाला राकेट-मोटर, छाते और मूठ के मध्य डंडी पर लगा होता है। सामान्य प्रणोदकों का प्रयोग करनेवाले मोटरों से यह भिन्न होता है।

तरल अथवा ठोस ईंधन इस्तेमाल करनेवाले राकेट-मोटर गर्म गैसें छोड़ते हैं। किन्तु यह मोटर विद्युतीकृत कण छोड़ता है।

इस मोटर के दो भाग होते हैं। उसमें एक टंकी होती है जिसमें क्षारीय धातु जैसी सेसीयम भरी रहती है। यह इतनी गर्म की जाती है कि धातु की भाप बन सके। इसके बाद भाप ऐसे कक्ष में प्रवेश करती है जहां वह गर्म प्लैटीनियम ग्रिड के सम्पर्क में आती है।

इससे सेसीयम भाप आयनीकृत अथवा विद्युतीकृत बन जाती है। टर्बो-जेनरेटर द्वारा उत्पादित करेंट का प्रयोग अब इन विद्युतीकृत परमाणु या आयनों की गति तेज करने एवं राकेट-मोटर के पिछले भाग में लगे नाज़ल से उन्हें बाहर निकालने के लिए किया जाता है।

इस तरह, परमाणु अन्तरिक्ष-यान को अन्तरिक्ष में विद्युतीय कणों से चलाया जाता है।

परमाणु अन्तरिक्ष-यान का संचालन तरल ईंधन का प्रयोग करनेवाले यान के संचालन से कुछेक मामलों में भिन्न होगा।

... अथवा पूरी उड़ान के दौरान चालू रहेंगे।

। जितनी
ागल की

काटेगा
ो गति

रिक्ष-
तक

के
ती

ा
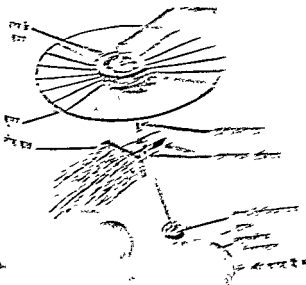
िया जाता है।

छाते का ऊपरी हिस्सा वास्तव में खोखला होता है। टर्बाइन भाप इसमें प्रवेश करती है। यहां वह बहुत जल्दी ठंडी हो जाती और फिर तरल रूप में संकलित हो जाती है और वापस न्यूक्लीय ोक्टर में पहुंच जाती है ताकि उसको फिर भाप बन सके।

परमाणु अन्तरिक्ष-यान को चलानेवाला राकेट-मोटर, छाते ौर मूठ के मध्य डंडी पर लगा होता है। सामान्य प्रणोदकों का योग करनेवाले मोटरों से यह भिन्न होता है।

तरल अथवा ठोस ईंधन इस्तेमाल करनेवाले राकेट-मोटर गर्म सें छोड़ते हैं। किन्तु यह मोटर विद्युतीकृत कण छोड़ता है।

इस मोटर के दो भाग होते हैं। उसमें एक टंकी होती है जिसमें ारीय धातु जैसी सेसीयम भरी रहती है। यह इतनी गर्म की जाती ् कि धातु की भाप बन सके। इसके बाद भाप ऐसे कक्ष में प्रवेश रती है जहां वह गर्म प्लैटीनियम ग्रिड के सम्पर्क में आती है।

इससे सेसीयम भाप आयनीकृत अथवा विद्युतीकृत बन जाती ्। टर्बो-जेनरेटर द्वारा उत्पादित करेंट का प्रयोग अब इन विद्युती- ृत परमाणु या आयनों की गति तेज़ करने एवं राकेट-मोटर के पिछले भाग में लगे नाजल से उन्हें बाहर निकालने के लिए किया ाता है।

इस तरह, परमाणु अन्तरिक्ष-यान को अन्तरिक्ष में विद्युतीकृत कणों से चलाया जाता है।

परमाणु अन्तरिक्ष-यान का संचालन तरल ईंधन का प्रयोग करनेवाले यान के संचालन से कुछेक मामलों में भिन्न होगा। ु-यान के मोटर लगभग पूरी उड़ान के दौरान चालू रहेंगे।

शक्ति-प्रणाली के कारण ही ऐसा करना सम्भव होगा।

परमाणु-यान उतनी जल्दी तेज गति प्राप्त नही करेगा जित कि अन्य अन्तरिक्ष-यान। इस कारण परमाणु-यान से मंगल यात्रा लम्बी होगी।

अन्तरिक्ष-स्टेशन से होकर परमाणु-यान पृथ्वी के चक्कर काटे और चूंकि उसका मोटर हर समय चालू रहेगा इसलिए उसकी ग धीरे-धीरे तेज होती जाएगी।

रवाना होने के दो घण्टे बाद परमाणु अन्तरिक्ष-यान अन्तरि स्टेशन से केवल 20 मील दूर होगा। लेकिन सौवें दिन के अंत त वह चन्द्रमा के आधे रास्ते तक पहुंच चुकेगा।

कुछ दिन बाद, पृथ्वी के गुरुत्वीय खिचाव से बच निकलने लिए उसकी गति पर्याप्त तेज हो जाएगी। तब वह मंगल ग्रह ओर बढ़ेगा।

जब यान मंगल के निकट पहुंचेगा, चालक उसके पथ को बद देगा और वह मंगल के चारों ओर चक्कर काटने लगेगा। परमा अन्तरिक्ष-यान को मंगल पर उतारने का प्रयत्न नही किया जाएगा

इसके बदले, परमाणु अन्तरिक्ष-यान पंखो से सुसज्जित ए राकेट-यान को अपने साथ ले जाएगा, जो इस ग्रह की सतह 'उतरेगा और वापस परमाणु अन्तरिक्ष-यान पर लौट आएगा।

राकेट-विशेषज्ञ इस बात से सहमत हैं कि किसी भी किस्म अन्तरिक्ष-यान के लिए अकेले मंगल की यात्रा पर चल पड़ बुद्धिमतापूर्ण नही होगा। कम से कम दो यान, या 5 अथवा 6 त एक साथ रवाना होंगे। यदि एक यान में कुछ गड़बड़ी हो गई तो इस तरह अधिक खतरा नहीं रहेगा।

यदि दो यान एक-दूसरे के नज़दीक उड़ रहे हों तो अन्तरिक्ष-पोशाक पहने यात्रियों के लिए एक यान से दूसरे में चले जाना संभव होगा।

अन्तरिक्ष-यानों के बेड़े से इस ग्रह की खोज के लिए अधिक संख्या में वैज्ञानिकों और इंजीनियरों का जाना भी हो सकेगा।

[illegible] है । यह एक ऐसा [illegible] है जिसप
खगोलशास्त्री एक शताब्दी से भी अधिक समय से विचार कर र
हैं। इस ग्रह के विषय में हर नई खोज के साथ रायें भी बदलतं
रही हैं।

पिछली शताब्दी के अन्त में अनेक खगोलशास्त्रियों को विश्वा
था कि मंगल में बुद्धिमान प्राणी रहते है । आज अधिकांश खगोल
शास्त्री इसपर विश्वास नहीं करते ।

प्रत्येक बार जब मंगल पृथ्वी के निकटतम आता है, विश्व
सभी भागों में अनेक खगोलशास्त्री अपना अधिकांश समय इस ला
ग्रह के अध्ययन में लगाते है । आपको याद होगा कि प्रत्येक
वर्ष और दो माह के बाद मंगल पृथ्वी के निकटतम होता है ।

तब मंगल आकाश में लाल दीपक की तरह चमकता है अं
अनेक लोग, जो मुश्किल से तारों की ओर देखते हैं, उसे देख
चौंकते हैं और उन्हें बड़ा आश्चर्य होता है ।

खगोलशास्त्रियों ने अपने दूरबीनों तथा दूरबीनों से सम्बद्ध अ
उपकरणों की सहायता से अध्ययन करके इस ग्रह के विषय में का
जानकारी प्राप्त की है ।

लेकिन अब वे उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब अन्तरिक्ष यान मंगल पर उतरेगा। उनको विश्वास है कि ग्रह से सम्बद्ध अनेक प्रश्न उसपर जाकर ही हल किए जा सकते हैं।

जरा देखें तो सही कि अपने दूरबीनों और अन्य उपकरणों की सहायता से खगोलशास्त्री मंगल के विषय में अब तक किन-किन बातों का पता लगा सके हैं। आपको याद होगा कि मंगल सूर्य से 14 करोड़ 10 लाख मील दूर है।

इस ग्रह का व्यास 4,215 मील है, जो पृथ्वी के आधे व्यास से कुछ ही अधिक है। यह ग्रह 24 घण्टे, 37 मिनट और 22 सैकंड में अपनी धुरी का चक्कर लगाता है। सूर्य का एक चक्कर लगाने में उसे 687 दिन लगते हैं।

इसका अर्थ यह हुआ कि मंगल का दिन पृथ्वी के दिन से कुछ ही बड़ा है, लेकिन मगल का एक वर्ष हमारे लगभग दो वर्ष के बराबर होता है। परिणामतः मंगल में चारों ऋतुओं में से प्रत्येक पृथ्वी की ऋतु से दुगुनी लम्बी होती है।

मंगल अपनी धुरी पर उतने ही अंश का कोण बनाता है जितना कि पृथ्वी। यह कोण करीब $23\frac{1}{2}$ अंश का होता है।

पृथ्वी की तरह, ध्रुवों पर मंगल भी कुछ चपटा है। छोटे आकार के कारण, मंगल में पृथ्वी के गुरुत्व-बल का 38 प्रतिशत गुरुत्व-बल होता है।

एक छोटा-सा दूरबीन भी यह प्रकट कर देता है कि मंगल आश्चर्यजनक सुन्दरता की वस्तु है। दूरबीन से देखने पर इस सारे ग्रह का रंग लालिमा लिए या नारंगी दिखाई देता है।

किन्तु ग्रह के मध्य में जो अनियमित पट्टी है, उसका रंग गहरा

है—नीला-भूरा, नीला-हरा और हरा।

एक छोटे दूरबीन से भी ग्रह के सफेद ध्रुवीय आवरण दिखाई दे जाते हैं।

मंगल में ऋतु परिवर्तनों के अध्ययन में खगोलशास्त्रियों की विशेष दिलचस्पी है। काफी हद तक इन्हीं परिवर्तनों के कारण यह विश्वास पैदा हुआ है कि मंगल में संभवतः जीवन है।

ऋतु बदलने से लाल क्षेत्र में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता। अधिकांश खगोलशास्त्रियों को विश्वास है कि ये चट्टानी या रेगिस्तानी क्षेत्र हैं।

गहरे रंग के क्षेत्र में परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देते है, और वर्ष-भर नियमित चक्र में ये परिवर्तन होते रहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये ध्रुवों में होनेवाले परिवर्तनों से सम्बद्ध हैं।

मंगल के उत्तरी गोलार्द्ध में वसन्त के आगमन के साथ ही उत्तरी-ध्रुवीय आवरण सिकुड़ने और छोटा होने लगता है। यह आवरण बिलकुल लुप्त भी हो सकता है। साथ ही, उत्तरी गोलार्द्ध में हरे क्षेत्रों का रंग गहरा हो जाता है और अधिक स्पष्ट हो जाता है।

यह परिवर्तन पहले उत्तरी ध्रुव के पास होता है। लेकिन यह धीरे-धीरे विषुवत् रेखा की ओर फैलता जाता है। गर्मियों-भर ये क्षेत्र हरे रहते है। किन्तु शरद में वे भूरे होना शुरू हो जाते है। साथ ही, ध्रुवीय आवरण पुनः बड़ा होना शुरू हो जाता है।

इसी प्रकार के परिवर्तन दक्षिणी गोलार्द्ध में भी होते हैं किन्तु, जैसाकि पृथ्वी पर होता है, दक्षिणी गोलार्द्ध में जब शीत ऋतु होती है तो उत्तरी गोलार्द्ध में ग्रीष्म ऋतु।

इन परिवर्तनों को देखते हुए, सहज ही यह कल्पना की जा सकती है कि मंगल में काफी वनस्पति होगी और इस ग्रह में निश्चय ही प्राणी रहते होंगे। 19वीं शताब्दी के अन्त में सामान्यतः यही राय थी।

ग्रह की सतह लाल व हरे क्षेत्रों में विभाजित होने के अतिरिक्त मंगल की सतह पर अन्य कई प्रकार के निशान भी प्रतीत होते हैं। किन्तु सर्वोत्तम दूरबीनों की सहायता से भी इन्हें देखना कठिन है। परिणामतः इनके विषय में तर्क-वितर्क हुए हैं।

1877 में, इतालवी खगोलशास्त्री जी० वी० शियापरेली ने घोषणा की कि उसने मंगल की सतह पर सुन्दर, सीधी रेखाओं के जाल का पता लगाया है। उसने इनका नाम रखा 'कैनाली', जो 'चैनल' के लिए इतालवी शब्द है। किन्तु इस शब्द का अनुवाद 'कैनाल' अर्थात् नहर किया गया।

इससे बड़ी उत्तेजना फैली और पहले की अपेक्षा यह अधिक निश्चित-सा होगया कि मंगल में अवश्य ही प्राणी रहते हैं।

अमरीकी खगोलशास्त्री पर्सीवल लोवेल का विश्वास था कि इस ग्रह की सारी सतह पर इस तरह की नहरों का जाल बिछा हुआ है। ये नहरें एक-दूसरे को काटती हुई गुजरती थीं और बहुधा एक ही स्थल पर चार या उससे अधिक नहरें मिलती थीं और उस स्थल का नाम उसने 'नखलिस्तान' रखा।

इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि ये नहरें कृत्रिम हैं और मंगल के निवासियों ने उन्हें खोदा है। यह कल्पना करना तो ...ान था ही कि इन नहरों का उद्देश्य खेतों और फार्मों की सिंचाई ...ना है।

किन्तु कुछेक खगोलशास्त्री अपनी इस बात पर अड़े रहे कि सीधी रेखाओं से मिलती-जुलती कोई वस्तु हमें मंगल की सतह पर नहीं दिखाई देती अपितु तरह-तरह के निशान दिखाई देते है । आज भी बात वैसी ही है ।

आज अधिकाश खगोलशास्त्री इस बात पर सन्देह करते है कि मंगल में नहर-प्रणाली है, किन्तु उन्हें पक्का विश्वास है कि वहां किसी न किसी तरह के पृष्ठ लक्षण हैं ।

यह सुझाव भी दिया गया है कि ये लकीरें संभवत. पुरानी नदियों अथवा तालाबों के, जो काफी पहले सूख चुके हैं, तल है । एक अन्य सुझाव यह है कि ये मंगल की सतह पर दरारें हैं ।

हाल के अध्ययन से अधिकाश खगोलशास्त्री इस विचार से सहमत हैं कि मंगल में कोई प्राणी नही है, वहां अधिक से अधिक वनस्पति हो सकती है ।

स्पैक्ट्रोस्कोप तथा अन्य उपकरणों से जो अध्ययन किया गया है उसमे पता चलता है कि मंगल में बहुत कम वायुमंडल है । यह पृथ्वी के वायुमंडल से कहीं अधिक विरल है और शायद 60 मील की ऊंचाई तक ही है ।

हाल में ही किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि मंगल के वायुमंडल में वाष्प की मात्रा पृथ्वी के वायुमंडल में विद्यमान भाप का केवल पांच प्रतिशत है ।

मंगल के वायुमंडल मे आक्सीजन तो और भी कम है । हमारे वायुमंडल में जितनी आक्सीजन है उसके एक प्रतिशत के दसवें भाग से भी कम मंगल के वायुमंडल में है ।

किन्तु विश्वास किया जाता है कि मंगल के वायुमंडल में पृथ्वी

के वायुमंडल से दुगना कार्बन डायोक्साइड है।

मंगल में दो तरह के बादल देखे जाते हैं। वायुमंडल के ऊपर सफेद बादल होते हैं जो संभवतः हलका कोहरा होता है।

निचले स्तर पर पीले बादल होते हैं। ऐसा समझा जाता है कि ये धूल के बादल होते हैं, जो लाल रेगिस्तानों से उठते हैं।

विद्युत थर्मामीटर को, जिसे तातान्तर-युग्म कहते हैं, दूरबीन से संलग्न कर मंगल का तापमान मापा गया है।

इन अध्ययनों से पता चलता है कि ग्रीष्म-ऋतु की दोपहर में हरे क्षेत्रों में तापमान 86 डिग्री फारेनहाइट तक होता है। लेकिन रात को तापमान तेज़ी से गिरता है क्योंकि मंगल में हवा बहुत विरल है। सूर्यास्त के समय वह गिरकर 9 डिग्री पर पहुंच जाता है और काफी रात तक शून्य से 150 डिग्री नीचे चला जाता है। जैसाकि हम जानते हैं, प्राणियों के लिए इतनी शीत बहुत ही ज्यादा है।

जिस तीव्र गति से जाड़ों में ध्रुवीय आवरण बनते हैं और गर्मियों में गलते है, उससे खगोलशास्त्रियों को यह विश्वास हो गया है कि ये हमारे ध्रुव प्रदेशों की तरह वर्फीले क्षेत्र नहीं हैं अपितु वर्फ की पतली परतें मात्र हैं, शायद दो या तीन इंच गहरी।

विशेष यन्त्रों का प्रयोग कर यर्क्स तथा मैकडोनाल्ड अनुसंधान-शालाओं के निदेशक डा० जेराल्ड क्यूपर ने मंगल के हरे क्षेत्रों से सूर्य के प्रकाश के प्रतिबिम्ब का अध्ययन किया है। पृथ्वी में हरे-भरे पौधों से आच्छादित पर्वतों के प्रतिबिम्ब की उन्होंने इससे तुलना की है।

इन अध्ययनों से, वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मंगल में मास

या शैवाक जैसी कम ऊंची वनस्पतियां ही होती हैं।

अनेक खगोलशास्त्रियों के ख्याल में मंगल ग्रह में अधिकांश आक्सीजन और वाष्प समाप्त हो चुके हैं और इसलिए वह धीरे-धीरे सूख रहा है।

प्रमुख प्रश्न यह है कि क्या कभी इस ग्रह पर बुद्धिमान प्राणी रहे और यदि रहे तो क्या वे अब भी जीवित हैं या नहीं? यह कहा जाता है कि मंगल के निवासी भूमिगत शहरों में रहते होंगे।

ये ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर तभी मिल सकेगा जब अन्तरिक्ष यान इस लाल ग्रह पर उतरेगा।

17

सौर-परिवार

शुक्र दूसरा ग्रह होगा जिसपर अन्तरिक्ष गवेषक पहुंचना चाहेंगे। शुक्र ग्रह पर पहुंचना मंगल ग्रह पर पहुंचने से अधिक मुश्किल नहीं होगा।

शुक्र और मंगल ग्रह हमसे निकटतम हैं। हमारी एक ओर मंगल है और दूसरी ओर शुक्र।

बाद में वैज्ञानिक, विशेषतः खगोलशास्त्री, अन्य ग्रहों में भी जाना चाहेंगे। सौर-परिवार में नौ ग्रह हैं।

बुध ग्रह सूर्य के निकटतम है। इसके बाद शुक्र है। तीसरा नम्बर हमारी पृथ्वी का है। इसके बाद क्रमशः मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून तथा प्लूटो हैं। मंगल और बृहस्पति के मध्य एक हजार से अधिक छोटे-छोटे ग्रह हैं जिन्हें क्षुद्र ग्रह कहते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ये किसी ऐसे ग्रह के, जिसका विस्फोटन हुआ हो या जो अन्य कारणों से छिन्न-भिन्न हो गया हो, अवशेष हैं।

खगोलशास्त्री ग्रहों को स्थलीय ग्रहों और मुख्य ग्रहों में बांटते हैं। बुध, शुक्र, पृथ्वी और मंगल स्थलीय ग्रह हैं और इन ग्रहों का ·· स्थलीय ग्रह इसलिए पड़ा कि वे कई मामलों में पृथ्वी से

...ते-जुलते हैं। बृहस्पति, शनि, यूरेनस तथा नेपच्यून पृथ्वी से
...त बड़े हैं और इसलिए उन्हें मुख्य ग्रह कहा जाता है।
इनमें प्लूटो शामिल नहीं है, जिसका, ऐसा प्रतीत होता है,
...ा एक अलग वर्ग है। किन्तु उसका आकार लगभग पृथ्वी के
...ार के बराबर ही है।

बुध से शुरू करके अब हम इन ग्रहों पर दृष्टिपात करेंगे।
...न को छोड़कर हमें मालूम पड़ेगा कि अन्य किसी भी ग्रह में
...न की कोई सम्भावना नहीं है।

अनेक लोग जीवन-भर बुध ग्रह नहीं देख पाते। इसका कारण
...है कि यह ग्रह कभी भी सूर्य से दूर नहीं होता और इसलिए
...य सूर्य की तेज चौंध में खो जाता है।

कभी-कभी गोधूलि के समय पश्चिमी आकाश में काफी नीचे
...जा सकता है। कभी वह सूर्योदय से ठीक पहले पूर्वी आकाश
...चे दिखाई देता है।

बुध सभी ग्रहों में सबसे छोटा है। वह हमारे चन्द्रमा से कुछ
...ड़ा है। उसका व्यास 3,100 मील है और वह सूर्य से अनुमानतः
...करोड़ मील दूर है।

यह छोटा-सा ग्रह सूर्य का एक चक्कर 88 दिन में लगाता है।
...अवधि में वह एक बार अपनी धुरी का चक्कर भी लगाता है।
...मानतः उसका भी, चन्द्रमा की तरह, सदैव एक ही पार्श्व सूर्य
...ओर रहता है।

...इसी कारण, बुध सभी ग्रहों से अधिक गर्म और साथ ही सबसे
...ग्रह है। माप से पता चलता है कि बुध के, सूर्य के प्रकाश से
...दीप्त पार्श्व का तापमान 770 फारेनहाइट होता है, जो सीसे

व दिन को गलाने के लिए पर्याप्त है।

बुध के दूसरे पार्श्व का तापमान शून्य से 400 डिग्री नीचे होता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि बुध की सतह चट्टानों से युक्त रेगिस्तान है। वहां वायुमंडल नहीं है। इन परिस्थितियों के अन्तर्गत, खगोलशास्त्रियों को दृढ़ विश्वास है कि बुध में प्राणी नहीं हैं।

शुक्र सभी ग्रहों से अधिक दीप्त और सुन्दर है। जब वह सूर्यास्त के समय पश्चिमी आकाश में दिखाई देता है तो उसे 'सांझ का तारा' कहते हैं। जब वह सूर्योदय से पहले पूर्वी आकाश में दिखाई देता है तो उसे 'भोर का तारा' कहते हैं।

यह लगभग पृथ्वी के ही आकार का है, और उसका व्यास 7,700 मील है। यह सूर्य से 6 करोड़ 70 लाख मील दूर है और सूर्य का एक चक्कर लगाने में उसे 225 दिन लगते हैं।

अन्य ग्रहों की अपेक्षा शुक्र पृथ्वी के सबसे निकट पहुंचता है। जब वह पृथ्वी के निकटतम होता है तो वह पृथ्वी से केवल 2 करोड़ 60 लाख मील दूर होता है।

इसलिए शायद तुम यह सोचोगे कि हम मंगल की अपेक्षा शुक्र के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त कर लेंगे। लेकिन वास्तव में शुक्र तो एक और भी बड़ा रहस्य है।

ऐसा इसलिए है कि शुक्र बादलों की इतनी घनी परतों से ढका रहता है कि हम कुछ देख नहीं सकते। हम उसकी सतह कभी नहीं देख पाते। हमें इस बात का भी निश्चित रूप से कोई पता नहीं कि अपनी धुरी में घूमने में उसे कितना समय लगता है। खगोलशास्त्रियों के विचार में वह दो या तीन सप्ताह में एक बार

अपनी धुरी में घूमता है।

खगोलशास्त्रियों ने शुक्र के उस वायुमण्डल का अध्ययन किया है जो बादलों की परत से ऊपर है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें आक्सीजन या जलवाष्प नहीं है, लेकिन कार्बन डाइआक्साइड प्रचुर मात्रा में है।

यह बताना बड़ा कठिन है कि ये बादल किस चीज़ से बनते हैं, क्योंकि शुक्र के वायुमण्डल में जलवाष्प नहीं है। एक सिद्धान्त यह है कि सूर्य के पराबैंगनी प्रकाश के कारण शुक्र में जलवाष्प बनता है जो कार्बन डाइआक्साइड के मिश्रण से फार्मेलडिहाइड में परिणत हो जाता है। यदि यह सिद्धान्त सही है तो शुक्र में बादल प्लास्टिक के बने हैं।

शुक्र की सतह पर तापमान कितना है? अधिकांश खगोलशास्त्रियों के विचार में वहां तापमान खौलते पानी से अधिक होगा और, जैसाकि हम जानते हैं, इतने अधिक तापमान में प्राणी रह नहीं सकते।

इस क्रम से तीसरा ग्रह है हमारी पृथ्वी। चौथा मंगल है। इसके बाद आते हैं विशाल ग्रह।

बृहस्पति ग्रह सौर-परिवार का सबसे बड़ा भाई है। यह सौर-परिवार का सबसे बड़ा ग्रह है और उसका व्यास 86,720 मील है। दूरबीन से देखने पर पता चलता है कि बृहस्पति बड़ा सुन्दर है। यह सुनहरा बिम्ब-सा दिखाई देता है जिसके आरपार प्रकाश और अंधेरे की पट्टियां चली गई हैं।

इसकी विषुवत् पट्टी चमकीली है, जिसका रंग पीले से लेकर मटियाला लाल होता है। इस पट्टी के ऊपर और नीचे गहरे रं

की पट्टियां हैं, जिनका रंग लालिमा लिए भूरे से लेकर नीला-भूरा होता है। इसकी सतह को ढांपनेवाली अन्य पट्टियां उत्तर और दक्षिण की ओर हैं।

इन पट्टियों का स्वरूप प्रतिवर्ष बदलता रहता है। समय-समय पर इस ग्रह पर अन्य वस्तुएं भी दिखाई देती हैं। 1878 में एक विशाल लाल बिन्दु दिखाई दिया। यह धीरे-धीरे धुंधला होता गया लेकिन शक्तिशाली दूरबीन से अब भी मामूली-सा देखा जा सकता है।

खगोलशास्त्रियों का निश्चित मत है कि बृहस्पति हमारी पृथ्वी तथा पृथ्वी के समान अन्य ग्रहों से बहुत भिन्न है।

इनका ख्याल है कि बृहस्पति में 40,000 मील व्यास का चट्टानी क्रोड है। इसे लगभग 20,000 मील मोटी बरफ की परत ढके हुए है। इस बर्फ का तापमान शून्य से लगभग 200 डिग्री फारेनहाइट नीचे है।

इस बर्फ के ऊपर हाइड्रोजन गैस से युक्त वायुमंडल है जिसमें अमोनिया और मेथैन के घने बादल छाये रहते हैं। दूरबीन से हमें इन बादलों की बाहरी सतह दिखाई देती है।

खगोलशास्त्रियों के विचार में शनि, यूरेनस और नेपच्यून में भी वैसी ही स्थिति है जैसीकि बृहस्पति में।

छोटा-सा प्लूटो सौर-परिवार का सबसे दूरस्थ ग्रह है। वह इतनी दूर है कि हमें उसके विषय में अधिक कुछ मालूम नहीं, लेकिन खगोलशास्त्री समझते हैं कि वह इतना ठंडा है कि वहां कोई जीवित नहीं रह सकता।

आकाश-गंगा में

अंधेरी रात में, जबकि आकाश साफ हो, तारे अगणित दिखाई देते हैं। वास्तव में वे अगणित नहीं हैं। पृथ्वी की सतह के किसी भी एक स्थान से आप बिना किसी चीज़ की सहायता लिए लगभग दो हज़ार तारे गिन सकते हैं।

किन्तु यदि आप किसी छोटे दूरबीन की सहायता से आकाश को देखें तो तारों की संख्या बढ़ जाती है। बिना किसी चीज़ की सहायता से देखने पर आकाश-गंगा आकाश के मध्य से गुज़रती हुई एक रजत रेखा-सी दिखाई देती है। एक छोटे-से दूरबीन से देखने पर भी यह पता चल जाता है कि आकाश-गंगा में हज़ारों-हज़ारों तारे हैं।

जितने बड़े दूरबीन से हम आकाश को देखेंगे, उतने ही अधिक तारे दिखाई देंगे। माउंट विल्सन-स्थित सौ-इंची दूरबीन और पैलोमर पर्वत-स्थित दो सौ-इंची दूरबीन के प्रयोग

कहते हैं। यह वह दूरी है जिसे प्रकाश की किरण एक वर्ष में त
करती है। प्रकाश की गति 186,000 मील प्रति सैकंड है। एक
में प्रकाश 6 महापद्म मील की दूरी तय करता है।

निकटतम तारा पृथ्वी से करीब $4\frac{1}{3}$ प्रकाश-वर्ष दूर है। अ
तारे दस प्रकाश-वर्ष दूर हैं, जबकि कुछ और 100 प्रकाश-
दूर हैं।

बिना किसी चीज की सहायता के जिन तारों को हम
सकते हैं उनमें से आधे से अधिक 400 प्रकाश-वर्ष से अधिक
है। आकाश-गंगा में जो तारे सबसे दूर हैं, वे लगभग 100,0
प्रकाश-वर्ष के फासले पर हैं।

अब आप समझ गए होंगे कि सौर-परिवार से आगे की य
करना कितना कठिन है। यदि हम प्रकाश की गति से अ
186,000 मील प्रति सैकंड के हिसाब से सफर करें तो भी निकट
तारे पर पहुंचने में हमें $4\frac{1}{3}$ प्रकाश-वर्ष लगेंगे। यह तारा दक्षि
गोलार्द्ध में है जिसे एल्फा सेन्टोरी कहते हैं।

शायद कुछेक चमकदार तारों से आप परिचित होंगे। लु
तारा, जो सभी तारों से अधिक चमकीला है, लगभग साढ़े
प्रकाश-वर्ष दूर है। प्रकाश की गति से चलनेवाला अन्तरिक्ष-
साढ़े आठ प्रकाश-वर्ष में इस तारे पर पहुंच पाएगा।

लेकिन कोई भी चीज प्रकाश की गति के बराबर तेज
चल सकती। ब्रह्मांड के विषय में यह एक विचित्र तथ्य है
सर्वप्रथम डा० एलबर्ट आइंस्टीन ने अपने सापेक्षता के सिद्धान
बताया था। संभव है कभी ऐसे अन्तरिक्ष-यान बन सकें जो लग
प्रकाश की गति से, शायद इस गति के 99.00 प्रतिशत की रफ

तारा है जिसके चारों ओर पृथ्वी चक्कर लगाती है।

हमारा सूर्य आकाश-गंगा के अरबों तारों में से एक है। ये सैकड़ों अरब तारे एक चपटी जेब-घड़ी की शक्ल में आकाश में बिखरे हैं।

आकाश-गंगा की चमकीली पट्टी में आपको इतने तारे इसलिए दिखाई देते हैं क्योंकि आप घड़ी की सुइयों को देख रहे हैं, आप आकाश-गंगा की गहराई में देख रहे हैं। जब आप आकाश के अन्य भागों को देखते हैं तो आप घड़ी के अग्र अथवा पार्श्व भाग को देख रहे होते हैं।

क्या कोई ऐसी संभावना है कि कभी हमारा अन्तरिक्ष यान सौर-परिवार, बृहस्पति तथा अन्य मुख्य ग्रहों एवं प्लूटो से भी आगे, सूर्य के प्रभाव-क्षेत्र के छोर पर स्थित धूमकेतुओं को पार करके आगे बढ़ सकेगा ?

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें आकाश-गंगा की दूरी के विषय में कुछ ज्ञान होना चाहिए।

आपको याद होगा कि पृथ्वी से चन्द्रमा 240,000 मील दूर है। पृथ्वी से सूर्य की दूरी 9 करोड़ 30 लाख मील है। प्लूटो पृथ्वी से साढ़े तीन अरब मील से अधिक दूर है।

आप देख रहे हो कि किस तरह दूरी बढ़ती जा रही है। पहले हमने लाखों मील का, फिर करोड़ों का और फिर अरबों का प्रयोग किया।

पृथ्वी से तारों की दूरी मापने के लिए महापद्म का प्रयोग करना होगा। सबसे निकटतम तारा 25 महापद्म मील है।

खगोलशास्त्री एक माप का [illegible] हैं जिसे वे प्रकाश-वर्ष

कहते हैं। यह वह दूरी है जिसे प्रकाश की किरण एक
करती है। प्रकाश की गति 186,000 मील प्रति सैकंड है
में प्रकाश 6 महापद्म मील की दूरी तय करता है।

निकटतम तारा पृथ्वी से करीब $4\frac{1}{3}$ प्रकाश-वर्ष दूर
तारे दस प्रकाश-वर्ष दूर हैं, जबकि कुछ और 100 प्र
दूर हैं।

बिना किसी चीज की सहायता के जिन तारों को दे
सकते है उनमें से आधे से अधिक 400 प्रकाश-वर्ष से अधि
है। आकाश-गंगा में जो तारे सबसे दूर हैं, वे लगभग 100
प्रकाश-वर्ष के फासले पर हैं।

अब आप समझ गए होंगे कि सौर-परिवार से आगे की य
करना कितना कठिन है। यदि हम प्रकाश की गति से अथ
186,000 मील प्रति सैकंड के हिसाब से सफर करें तो भी निकटत
तारे पर पहुंचने में हमें $4\frac{1}{3}$ प्रकाश-वर्ष लगेंगे। यह तारा दक्षिण
गोलार्द्ध में है जिसे एल्फा सेन्टौरी कहते हैं।

शायद कुछेक चमकदार तारों से आप परिचित होंगे। लुब्धक
तारा, जो सभी तारों से अधिक चमकीला है, लगभग साढ़े आठ
प्रकाश-वर्ष दूर है। प्रकाश की गति से चलनेवाला अन्तरिक्ष-यान
साढ़े आठ प्रकाश-वर्ष में इस तारे पर पहुंच पाएगा।

लेकिन कोई भी चीज प्रकाश की गति के बराबर तेज नहीं
चल सकती। ब्रह्मांड के विषय में यह एक विचित्र तथ्य है जिसे
सर्वप्रथम डा० एलबर्ट आइंस्टीन ने अपने सापेक्षता के सिद्धान्त में
बताया था। संभव है कभी ऐसे अन्तरिक्ष-यान बन सकें जो लगभग
प्रकाश की गति से, शायद इस गति के 99.99 प्रतिशत

से, उड़ सकें।

किन्तु इतनी गति प्राप्त करने के लिए प्रचुर मात्रा में ई की जरूरत पड़ेगी। फिलहाल हम यह नहीं जानते कि ऐसा किया जाए।

यदि हम लगभग प्रकाश की गति से सफर कर सके तो विचि बात होगी। इस बात का भी उल्लेख आइंस्टीन ने अ सापेक्षता के सिद्धान्त में किया है।

आइंस्टीन ने बताया कि समय की माप उस गति पर नि है जिससे हम सफर कर रहे हैं। जितनी तेज गति से आप सा कर रहे हैं उतनी ही धीमी आपकी घड़ी चलेगी। पृथ्वी पर. महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि अत्यधिक तेज गति से भी घड़ी की रफ्त में जो अन्तर आता है वह इतना न्यून होता है कि उसे मापा न जा सकता।

लेकिन यदि आप पृथ्वी से लगभग प्रकाश की गति से अ यान में रवाना हुए तो उसका काफी अन्तर पड़ेगा। पृथ्वी की के अनुसार आप एक सौ साल पूर्व जा चुके होंगे। लेकिन अ यान की घड़ी के अनुसार आपको रवाना हुए केवल एक घंट होगा।

मुख्य प्रश्न यह है कि यात्रा में आपका क्या होगा? क्या आयु एक घंटा बढ़ेगी या सौ वर्ष?

वैज्ञानिकों का ख्याल है कि आपकी आयु एक घंटा ही ब ... : यह है कि आपके शरीर का हर अणु एक घ ... के चारों ओर उसी तरह घूम रहे हैं जिस ... डायल के चारों ओर घूमती हैं।

था, वह अपनी प्रथम उड़ान में हवा में एक मिनट से भी कम रहा। गोडार्ड का तरल ईंधन वाला प्रथम राकेट आकाश में ढाई सेकंड ही रहा।

प्रथम कृत्रिम उपग्रह 1957 में छोड़ा गया। अन्तरिक्ष-यात्रा का युग तो अभी शुरू हुआ ही है।

○ ○

पारिभाषिक शब्द

अन्तरिक्ष	— Space
अन्तरग्रही अन्तरिक्ष	— Interplanetary
अन्तरिक्ष यान	— Space Ship
आयन मंडल	— Ionosphere
आयन युक्त	— Ionized
इलेक्ट्रानिक	— Electronic
उपग्रह	— Satellite
उल्का	— Meteor
ऐंटेना	— Antenna
ओज़ोन मंडल	— Ozonosphere
गुरुत्वीय	— Gravitational
घूर्णाक्ष (जाइरो)	— Gyro
जाइरोस्कोप	— Gyroscope
जिम्बल (छल्ले)	— Gimbal
दीर्घवृत्तीय कक्षा	— Elliptical orbit
निष्क्रिय गैस	— Inert Gas
पराबैंगनी	— Ultraviolet
प्लेटिनम ग्रिड (प्लेटिनम जाल)	— Platinum Grid